इस पीढ़ीका कौन पाठक ऐसा है जो शरत्के नारी-पात्रोंसे अपरिचित होगा। श्रीकान्तके घुमक्कड़ जीवनकी केन्द्रबिन्दु असीम स्नेहमयी राजलक्ष्मी, वृन्दावन जाती हुई लांछिता कमललता, देवदासकी पारो, गृहदाहमें दो दो मित्रोंके बीच भटकती हुई अचला, असीम वात्सल्यमयी बिन्दो—इन स्नेह करुणा, ममता और मर्यादासे निर्मित शब्द-मूर्तियोंकी एक पूरी पंक्ति हमारी मनकी आँखोंके सामनेसे गुज़र जाती है। हर पाठकने व्यथाके क्षणोंमें शरत्के इन पात्रोंसे प्रेरणा पाई है, सान्त्वना पाई है। वे हमारे जीवनके अभिन्न अंग बन चुके हैं।

शरत्के इन अमर नारीपात्रोंका अत्यन्त सूक्ष्म और सहानुभूतिपूर्ण विश्लेषण श्री रामस्वरूप चतुर्वेदीने प्रस्तुत किया है। हिन्दी समीक्षाके क्षेत्रमें वे अभी नये हैं, किन्तु आते ही उन्होंने सभीका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। नयी कविताके सह-सम्पादकके नाते उन्होंने और भी ख्याति अर्जित की है। यह समीक्षा-कृति उनके कृतित्वको प्रतिष्ठा प्रदान करती है।

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला-हिन्दी-ग्रन्थाङ्क—६१

शरत्‌की सूक्तियाँ

रामप्रकाश जैन, एम. ए.

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए०

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

●

प्रथम संस्करण
१९५७ ई०
मूल्य दो रुपये

●

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

पीतलको सोना कहकर चलानेसे न तो सोनेका गौरव
बढ़ता है और न पीतलका। साथ ही पीतल
की भी जाति मारी जाती है।

—शरत्

निवेदन

इस देशमें मेरे ही समान शरत्‌के असंख्य प्रेमी हैं। शरत्‌की लेखनी के निर्झरसे अनेक साहित्यिक सूक्तियोंके मणि-माणिक्य सहसा ही झरते हुए चले गये हैं। मैंने उन्हींको यहाँ ग्रन्थित कर दिया है। आशा है पाठकोंको यह प्रयास रुचेगा।

इन उक्तियोंमें कहीं धर्म, समाज, साहित्य तथा अनेक प्रचलित धारणाओंको चुनौती है, कहीं अनुभवकी आगमें पके हुए अक्षय सूत्र हैं, कहीं हृदयकी वेदना पिघलकर मार्मिक चुटकियोंमें उच्छ्वसित है और कहीं घोर-कठोर या खरे सत्य! पाठक पूछना चाहेंगे—'क्या ये शरत्‌के विचार हैं?" उत्तरमें मैं उन्हें पुस्तकके नामकी ओर आकर्षित करना चाहूँगा—'शरत्‌की सूक्तियाँ।' ये उक्तियाँ शरत्‌की बहु-रूपी रचनाओं, यथा—कहानी, उपन्यास, निबन्ध, भाषण और पत्रोंसे चुनी गई हैं। जो अंश गल्प-साहित्यसे लिये गये हैं उनमें यह निर्णय करना कठिन है कि वह शरत्‌का अपना मत है—या मात्र एक दृष्टिकोण! मैं समझता हूँ कि उन्हें यही मानकर चलना उपयुक्त होगा कि वे शरत्‌की नहीं, उनके पात्रोंकी अपनी परिस्थिति-विशेषकी मान्यतायें हैं। यही कारण है कि कभी-कभी इन उक्तियोंमें परस्पर अन्तर्विरोध दिखाई देता है। जो अंश निबन्ध और व्याख्यानसे लिये गये हैं उनमें आपको शरत्‌के प्रत्यक्ष दर्शन हो जाते हैं। यह उक्तियाँ कथन या अभिव्यक्ति-चातुर्यको भी ध्यानमें रखकर चुनी गई हैं। साथ ही उन्हें भरसक छोटा बनानेकी भी चेष्टा की गई है। पुस्तकका उद्देश्य केवल पाठकोंकी विचार-दीपशिखाको प्रज्वलित

करना है। जो शरत्‌के विचार जाननेके इच्छुक हैं उन्हें शरत्-साहित्य पढ़ना चाहिए।

जिज्ञासु पाठकोंकी सुविधाके लिए उक्तियोंका उद्‌गम स्थल नीचे लिख दिया गया है। रचनाओंके नाम ये हैं जो हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर, बम्बईसे प्रकाशित शरत्-साहित्यमें हैं। इसी मालामें पहले 'पथेर दावी' का अनुवाद 'पथके दावेदार' नामसे हुआ था, नये संस्करणोंमें वह 'अधिकार' नामसे है, मैंने इसीको लिया है।

अन्तमें निवेदन कर दूँ कि उक्तियोंका चुनाव मेरी अपनी रुचिसे हुआ है। चुनावका रूप मेरा है, हो सकता है कि अन्य लोगोंके विचारसे कुछ छूट गया हो, या कुछ अनावश्यक हों, लेकिन जिन्होंने शरत्-साहित्यका लगनसे अध्ययन किया है उन्हें कदाचित् ऐसा सोचनेका अवसर नहीं मिलेगा।

फिरोज़ाबाद
२२-१-५७

—रामप्रकाश जैन

विषय-सूची

शरत्‌की सूक्तियाँ

••• सत्य और मिथ्या

जो सत्य है, उसीको सब समय, सब अवस्थाओंमें ग्रहण करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। इससे चाहे वेद ही मिथ्या हो जायँ, और चाहे शास्त्र ही मिथ्या हो जायँ। वे सत्यसे बढ़कर नहीं हैं, सत्यकी तुलनामें उनका कोई मूल्य नहीं है।

—चरित्रहीन

कोई भी बात बहुत लोगोंके बहुत ज़ोर देकर कहते रहनेपर भी केवल कहनेके ज़ोरसे ही सत्य नहीं हो उठती।

—निबन्धावली, नि०—'वर्तमान हिन्दू-मुसलिम समस्या'

अच्छी तरहसे देखनेपर 'मिथ्या' नामक किसी भी वस्तुका अस्तित्व इस विश्व-ब्रह्माण्डमें नज़र नहीं पड़ता। सोनेको पीतल मानना भी मिथ्या है, और मनाना भी,—यह मैं जानता हूँ। परन्तु इससे सोने अथवा पीतलका क्या आता-जाता है? तुम्हारी जो मर्ज़ी हो सो उसे मानो। सोना समझ कर उसे सन्दूकमें बन्द करके रखनेसे उसके वास्तविक मूल्यमें वृद्धि नहीं होती; और पीतल कहकर बाहर फेंक देनेसे उसका मूल्य नहीं घटता। तुम्हारे मिथ्याके लिए तुम्हें छोड़कर न और कोई उत्तरदायी है; और न कोई भ्रूक्षेप ही करता है। मिथ्याका स्थान यदि कहीं है तो मनुष्यके मनको छोड़कर और कहीं नहीं।

—श्रीकान्त, पर्व १

झूठको इज़्ज़त देकर जितना ऊँचा उठाया जाता है, उतनी ही ग्लानि, उतना ही कीचड़, उतना ही अनाचार इकट्ठा होता रहता है।

—ब्राह्मणकी बेटी,

जहाँ सत्यका बन्धन नहीं है, वहाँ रासको ढीला करना अच्छा नहीं होता। ठगाना पड़ता है।

—श्रीकान्त, पर्व २

सत्य जब सचमुच ही मनुष्यके हृदयसे निकल कर सम्मुख आ उपस्थित हो जाता है, तब मालूम होता है कि वह सजीव है,—मानो उसके रक्त-मांसयुक्त शरीर है, और मानो उसके भीतर प्राण भी हैं,— 'नहीं' कहकर अस्वीकार करनेपर मानो वह चोट करके कहेगा, "चुप रहो, मिथ्या तर्क करके अन्यायकी सृष्टि मत करो!"

—श्रीकान्त, पर्व २

सत्य पालन करनेमें दुःख है। उसे कष्ट और आघातोंमेंसे तो किसी न किसी दिन पाया भी जा सकता है, पर वंचना या प्रतारणाके मीठे रास्तेसे वह कभी नहीं चलता-फिरता।

—अधिकार

सत्यका स्थान हृदयमें है, मुँहमें नहीं। केवल मुँहसे निकलनेके कारण ही कोई बात सत्य नहीं बन जाती। तो भी उसे ही जो लोग सबसे आगे—सबसे ऊपर स्थापित करना चाहते हैं, वे सत्यसे प्रेम करनेके कारण नहीं, बल्कि सत्य भाषणके दम्भसे प्रेम करनेके कारण ही ऐसा कहते हैं।

—दत्ता

मनुष्य झूठके साथ समझौता करके जीवनकी कितनी सम्पदा नष्ट कर देता है?

—शेष प्रश्न

असम्भव सच होनेपर भी कहना नहीं चाहिए; शास्त्रोंमें उसकी मनाही है।

—विप्रदास

मिथ्याकी तरह सत्यको भी मानवजाति दिन-रात बनाया करती है। शाश्वत सनातन नहीं है यह,—जन्म और मृत्यु दोनों हैं इसके। मैं झूठ नहीं कहता—मैं प्रयोजनसे सत्यकी सृष्टि करता हूँ।

—अधिकार

मिथ्यासे बहला कर सत्यका प्रचार नहीं हुआ करता। सत्यको सत्य ही की तरह खुलासा कहना चाहिए। सत्यको मिथ्याकी भूमिकासे मुख-रोचक बनानेकी चेष्टाके बराबर और कोई अन्याय नहीं है। मिथ्या पाप है, किन्तु मिथ्याको सत्यमें मिलाकर कहनेके समान पाप संसार में थोड़े ही हैं।

—चरित्रहीन

••• क्षमा

समयका व्यवधान अपराधकी गुरुताको ज्यों-ज्यों अस्पष्ट करता जाता है, ज्यों-ज्यों लघु बनाता जाता है, दण्डका भार त्यों-त्यों और भी गुरुतर, और भी असह्य होता जाता है।

—स्वामी

कोई भी क्यों न हो, जिसका कार्य-कारण हमें नहीं मालूम, उसे अगर हम माफ़ भी न कर सकें, तो उसका विचार करके कम से कम उसे अपराधी तो न ठहरावें।

—गृहदाह

संसारमें ऐसे अपराध कम ही हैं जिन्हें हम चाहें और क्षमा न कर सकें।

—गृहदाह

अपराधी क्षमा करनेके योग्य है अथवा नहीं, ऐसा सोचना तो क्षमा करना नहीं है। क्षमा अपराधीकी योग्यता या अयोग्यताका विचार करके नहीं चलती।

—गृहदाह

क्षमाका फल क्या सिर्फ़ अपराधीको ही मिलता है? जो क्षमा करता है, उसे क्या कुछ भी नहीं मिलता?

—गृहदाह

माँगनेके पहले ही अपने आप गले पड़कर क्षमा देनेके मानी हैं मनुष्यकी बेइज़्ज़ती करना।

—चरित्रहीन

बहुत सी ऐसी चीज़ें हैं, जिन्हें क्षमा करनेसे ही उनका अन्त हो जाता है।

—चरित्रहीन

लोग कहते हैं, वह दयाके योग्य नहीं है। दयाके लिए योग्यता, अयोग्यता क्या है? दया जो करता है वह तो अपनी ही गरज़से करता है।

—देना पावना

जिसको लोभ नहीं, जो कुछ चाहता नहीं, उसे सहायता करने जाना—इससे बढ़कर संसारमें और कोई विडम्बना नहीं है।

—श्रीकान्त, पर्व ३

केवल देनेसे ही देना नहीं होता, ग्रहण करनेकी भी तो एक शक्ति है।

—निबन्धावली—साम्प्रदायिक बँटवारा (२)

••• दुःख

दुःख जिसे कहते हैं वह न तो अभावरूप ही है और न शून्यरूप। भयहीन जो दुःख है, उसका उपभोग सुखकी तरह ही किया जा सकता है।

—श्रीकान्त, पर्व २

दुःखका भोग करनेमें भी एक किस्मका नाशकारी मोह है। मनुष्यने अपनी युग-युगकी जीवन-यात्रामें यह देखा है कि कोई भी बड़ा फल किसी बड़े भारी दुःखको उठाये बिना नहीं प्राप्त किया जा सकता। उसका जन्म-जन्मान्तरका अनुभव इस भ्रमको सत्य मान बैठा है कि जीवनरूपी तराजूमें एक तरफ़ जितना ही अधिक दुःखका भार लादा जाय, दूसरी ओर उतना ही अधिक सुखका बोझा ऊपर उठ जाता है।

—श्रीकान्त, पर्व २

सुख प्राप्त करनेके लिए दुःख प्राप्त करना चाहिए, यह बात सत्य है किन्तु इसीलिए, यह स्वतःसिद्ध नहीं हो जाता कि जिस तरह भी हो बहुत-सा दुःख भोग लेनेसे ही सुख हमारे कंधोंपर आ बैठेगा। यह इस कालमें भी सत्य नहीं है और परलोकमें भी नहीं।

—श्रीकान्त, पर्व २

वेदना और बेइज्ज़तीके मुक़ाबिले दुनियामें ऐसी कोई चीज़ नहीं है जो मनुष्यकी सच्ची रूहको खींचकर बाहर ला सके।

—अधिकार

स्वेच्छासे ग्रहण किये हुए दुःखको ऐश्वर्यके समान भोगा जा सकता है।

—शेष प्रश्न

ग़रीबीके कष्ट भोगनेकी विडम्बनासे कभी महत्त्वको नहीं पाया जा सकता, हाँ, पाया जा सकता है तो थोड़े-से दम्भ और अहम्मन्यताको।

—शेष प्रश्न

ग़रीबी या अभाव इच्छासे आवे या इच्छाके विरुद्ध आवे, उसमें गर्व करने लायक कुछ नहीं होता। उसके भीतर है शून्यता, उसके भीतर है कमज़ोरी, उसके भीतर है पाप।

—शेष प्रश्न

आनन्द तो नहीं, बल्कि निरानन्द ही मानो उस (हिन्दू समाज) की इस सभ्यता और भद्रताका अन्तिम लक्ष्य बन गया है।

—शेष प्रश्न

मनुष्यका दुःख ही यदि दुःख पानेका अन्तिम परिणाम हो तो उसका कोई मूल्य नहीं है।

—शेष प्रश्न

दुःखी लोगोंकी कोई अलहदा जाति नहीं है, और दुःखका भी कोई बँधा हुआ रास्ता नहीं है। ऐसा हो तो सभी उसे बचाकर चल सकते।

—देना पावना

• • • शिक्षा

जो शिक्षा हमें आत्मस्थ नहीं होने देती, अतीतकी गौरवगाथाको मिटाकर आत्म-सम्मानपर लगातार चोट पहुँचाती है, कानोंको केवल यह सुनाती रहती है कि हमारे बाप-दादे केवल भूतोंके ओझा, मंत्र-तंत्र और ज्योतिषी आदिको लेकर ही व्यस्त थे, उन्हें कार्य-कारणके सम्बन्धका ज्ञान नहीं था, और विश्व जगत्के अव्याहत नियमकी ही धारणा नहीं थी,—इसीसे हमारी यह दुर्दशा है, तो उस शिक्षामें चाहे जितना मज़ा हो, उसके साथ बिना बाधाके गलेमिलौवल ज़रा देख सुनकर ही करना अच्छा है।

—निबन्धावली, नि०-शिक्षाका विरोध

भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र हिन्दू हैं या म्लेच्छ, यह कोई नहीं कहता। विद्याकी कोई जाति नहीं होती, यह बात सच है; किन्तु इसीसे यह कहना कि कल्चर या संस्कृतिकी भी कोई जाति नहीं, किसी तरह सत्य नहीं। और उनकी (पश्चिम) शिक्षाको विषकी तरह छोड़नेके लिए अगर किसीने व्यवस्था दी हो तो केवल इसी कारण, विद्याके कारण नहीं।

—निबन्धावली, नि०-शिक्षाका विरोध

जो शिक्षा आदमीको इतना संकीर्ण और स्वार्थी बना देती है, उसका मूल्य किसी ज़मानेमें चाहे जो रहा हो, अब नहीं है।

—नया विधान

••• साहित्य

कहनेसे ही तो कहना नहीं हो जाता। भ्रमण करना एक बात है और उसका वर्णन करना दूसरी बात। जिसके भी दो पैर हैं, वह भ्रमण कर सकता है, किन्तु दो हाथ होनेसे ही तो किसीसे लिखा नहीं जा सकता।

—श्रीकान्त, पर्व १

एक दफ़े समालोचकोंके लेखोंको पढ़कर देखो, बिना हँसे रहा नहीं जाता। कविको अतिक्रम करके वे काव्यके मनुष्यको चीन्ह लेते हैं और ज़ोरके साथ कहते हैं,"यह चरित्र किसी तरह भी वैसा नहीं हो सकता—वह चरित्र कभी वैसा नहीं कर सकता," ऐसी और कितनी ही बातें हैं। लोग वाहवाही देकर कहते हैं, "वाह इसीको तो कहते हैं क्रिटिसिज़्म (आलोचना)! इसीको तो कहते हैं चरित्र-समालोचना।

—श्रीकान्त, पर्व १

ऐसा ही होता है। दूसरेका विचार करते समय किसी मनुष्यको कभी यह कहते नहीं सुना कि वह अन्तर्यामी नहीं है, अथवा कहीं उसका भ्रम या प्रमाद हो सकता है। सभी कहते हैं कि मनुष्यको चीन्हनेमें हम बेजोड़ हैं, इस विषयमें हम एक पक्के जौहरी हैं।

—श्रीकान्त, पर्व २

चिरस्थायी प्रेम कलाकारोंके मार्गका विघ्न है, उनकी सृष्टिके लिए अन्तराय है, उनके स्वभावका परम विरोधी है।......असलमें वे प्रेम करते हैं सिर्फ़ अपने आपसे।

—शेष प्रश्न

दूसरेके अत्यन्त सङ्कटके समय जब अपने निजके विवेक और संस्कारके बीच स्वाधीन विचार और पराधीन ज्ञानके बीच, संघर्ष छिड़ता है तब दूसरेको उपदेश देने जाने जैसी विडम्बना संसारमें शायद ही कोई हो।

—श्रीकान्त, पर्व २

यह अस्वाभाविक होगा, और अस्वाभाविक चीज़ टिकती नहीं। अशिक्षितोंके लिए अन्न-सत्र खोला जा सकता है, पर साहित्य नहीं रचा जा सकता। उनके दुःख-सुखोंका वर्णन करनेका नाम ही साहित्य नहीं है। किसी दिन अगर सम्भव हुआ तो अपना साहित्य वे खुद ही रचेंगे।

—अधिकार

कविकी जातिकी खोज नहीं की जाती।

—श्रीकान्त, पर्व ४

क्या पारिवारिक, क्या सामाजिक, और क्या शक्ति-विशेषकी जीवन-समस्या, चित्रित करनेमें मैं केवल वेदनाका विवरण, दुःखकी कहानी, अविचारकी मर्मभेदी जलनका इतिहास अभिज्ञताके पृष्ठोंपर कल्पनाकी क़लमसे लिखता चला गया हूँ। इसी जगहपर मेरे साहित्य-रचनाकी सीमा-रेखा है। अपनी जानमें मैंने अपनेको कभी इसका लंघन नहीं करने दिया। इसीलिए मेरे लिखनेमें समस्या है, समाधान नहीं है; प्रश्न है; उसका उत्तर ढूँढे नहीं मिलता। कारण, मेरा यह चिरकालका विश्वास है कि समस्याके समाधानकी ज़िम्मेदारी काम करनेवालों पर है, साहित्यिक पर नहीं।

—तरुणोंका विद्रोह

सबसे जीवित रचना वह है जिसे पढ़नेसे प्रतीत हो कि लेखकने अन्तरसे सब कुछ फूलकी तरह प्रस्फुटित किया है।

—पत्रावली, दिलीपकुमार रायको

"कवि,—तुम बड़े तो हो ही । तुम्हारा परिचय ही तो जातिका सच्चा परिचय है । तुम लोगों (कवियों, कलाकारों) को छोड़ देनेसे उसका वजन किस चीज़से किया जायगा ? (जब देश स्वतंत्र हो जायगा) तुम्हीं तो देशकी समस्त विच्छिन्न विक्षिप्त धाराओंको एक सूत्रकी तरह एकत्र गूँथ जाओगे ।"

—अधिकार,

मेरी इतनी प्रशंसासे तुम्हें शायद संकोच होगा, और शायद सभी मेरे साथ एकमत भी नहीं होंगे । लेकिन (कहानी कलाका) मुझसे अच्छा मर्मज्ञ आजके युगमें रवि बाबूको छोड़कर कोई नहीं है ।

—पत्रावली, उपेन्द्रनाथ गं० पा० को

जो लिखना नहीं जानते; अर्थात् जिनकी रचनाओंकी परख नहीं हुई है, वे चाहे जितने बड़े आदमी क्यों न हों, जाने बग़ैर उनकी लम्बी रचनाएँ छापनेमें निराशाकी सीमा नहीं । ये लोग समझते हैं कि सारी बात कहनी ही चाहिये । जो कुछ देखते हैं, सुनते हैं, जो कुछ होता है, समझते हैं सब कुछ लोगोंको दिखाना-सुनाना चाहिए । लेकिन लम्बे अनुभवसे अन्तमें समझ जाते हैं कि बात ऐसी नहीं है । बहुत-सी चीज़ें छोड़ देनी पड़ती हैं, बहुत कुछ बोलनेके लोभका संवरण करना पड़ता है । बोलने या अंकन करनेसे न बोलना या न अंकन करना अत्यन्त कठिन है । बहुत आत्म-संयम, बहुत लोभका दमन करना पड़ता है, तभी सचमुच बोलना और अंकन करना होता है ।

—पत्रावली, हरिदास चट्टो० को

जो लोग अन्धाधुन्ध नारी-जातिके प्रति ग्लानिके प्रचारको ही यथार्थवाद समझते हैं उनमें आदर्शवाद तो है ही नहीं, यथार्थवाद भी नहीं है । है केवल अभिनय और झूठी स्पर्द्धा—न जाननेका अहंकार ।

—पत्रावली, दिलीपकुमार रायको

केवल लिखना ही कठिन नहीं है, न लिखनेकी शक्ति भी कुछ कम कठिन नहीं है।

---पत्रावली, दिलीपकुमार रायको

जीवनमें जिसने प्यार नहीं किया, कलंक मोल नहीं लिया, उसकी दूसरेके मुखसे लिये गये स्वाद-सी कल्पना सच्चे साहित्यकी सामग्री कब तक बनेगी? जिसका अपना ही जीवन नीरस है, बंगालकी बाल-विधवाकी तरह पवित्र है, वह प्रथम जीवनके आवेगसे कितना भी करे, दो दिनमें सब कुछ मरु-भूमिकी तरह शुष्क श्रीहीन हो उठेगा।

---पत्रावली, दिलीपकुमार रायको

मैं भी उन नारोंको नहीं मानता—जैसे कला कलाके लिए, धर्म धर्मके लिए, सत्य सत्यके लिए, आदि। कलाकी उपलब्धि सबकी एक तरहकी नहीं होती। वह अन्तरकी वस्तु है। उसकी संज्ञाका निर्देश करने जाना और उसके बाद ही एक जोरका झोंका देना अवैध है। धर्म, सत्य, आदि केवल बातें ही नहीं हैं। उनसे भी कुछ अधिक हैं। कहानीका उद्देश्य अगर चित्तरंजन करना ही है तो भी यह तथ्य रह जाता है कि वह दो शब्दोंका समावेश है—चित्त और रंजन। किन्हीं भी दो आदमियोंका चित्त एक-सा नहीं होता।

---पत्रावली, दिलीपकुमार रायको

साहित्य-सृजनके अन्तरालमें जो स्रष्टा रहता है, यदि वह छोटा हुआ तो उसकी सृष्टि भी बड़ी होनेमें बड़ी बाधा पाती है।

—पत्रावली, दिलीपकुमार रायको

लिखनेमें संयत होना आवश्यक है। हाँ, संयम वस्तु एक प्रकारकी सहज बुद्धि है। अपनेमें अगर न हो तो दूसरेको समझाया नहीं जा सकता। ...जहाँ तहाँ अकारण ही दूसरोंकी रचनाओंके उद्धरण देना, इससे बढ़कर असुन्दर वस्तु दूसरी नहीं। अमुक ग्रन्थकार की '—'

इन बातोंसे मैं एकमत हूं और उस आदमीकी '—' ये पंक्तियाँ भद्दी हैं, अमुक लेखककी '—' इन पंक्तियोंने बड़े ही सुन्दर ढंगसे प्रकट किया है, आदि-आदि। ये बातें अत्यन्त रूखे ढंगसे पाठकसे कहना चाहती हैं कि तुम लोग देखो कि इस छोटीसी उम्रमें मैंने कितना समझा है, कितनी पुस्तकें पढ़ी हैं।

—पत्रावली, दिलीपकुमार रायको

महिलाओंके विरुद्ध कड़ी बातें लिखना बहादुरी हो सकती है, लेकिन उस पथ पर चलकर सच्चे साहित्यका सृजन नहीं हो सकता।

—पत्रावली, दिलीपकुमार रायको

उपमा—उदाहरण कोईभी चीज़ रवीन्द्रनाथकी तरह निरर्थक और असम्बद्ध न हो उठे। मनुष्यको अलंकारसे सजानेकी रुचि और सुनारकी दूकानमें अलंकारोंसे 'शोकेस' के सजानेकी रुचि एक नहीं है। अलंकृत वाक्यका बाहुल्य कितना पीड़ादायक होता है, इस बातको केवल पाठक ही जानते हैं।

—पत्रावली, दिलीपकुमार रायको

वर्तमान काल ही साहित्यका चरम हाई कोर्ट नहीं है।

—पत्रावली, अतुलानन्द रायको

ग्रन्थकार किसी विशेष जाति-सम्प्रदायका नहीं होता। वह हिन्दू, मुसलमान, यहूदी, ईसाई सब कुछ है।

—पत्रावली, काजीवदूदको

कवि केवल सृष्टि ही नहीं करता, सृष्टिकी रक्षा भी करता है। जो स्वभावसे ही सुन्दर है उसे और भी सुन्दर करके प्रकट करना जैसे उसका एक काम है, वैसे ही जो सुन्दर नहीं है उसे असुन्दरके हाथसे बचा लेना भी उसका दूसरा काम है।

—चरित्रहीन

"तुम्हारे भीतर कुछ है जो सच्चा प्रेमिक है, सचमुच कवि है। इस चीज़को अगर तुम मार डालना नहीं चाहते हो, तो दूसरेको अपराधी बनानेके सुखसे तुम्हें अपनेको वंचित करना ही होगा। यह बात कभी मत भूलो कि कवि विचारक नहीं होता। नीतिशास्त्रके मतके साथ यदि तुम्हारा मत अक्षरशः मेल न खाय, तो इसके लिए लज्जित न होना। खूनके अपराधमें जज साहब जब अभागे अपराधीको प्राणदण्ड देते हैं, तब वह विचारक होते हैं; किन्तु जब अपराधीके हृदयकी कमज़ोरीका अनुभव करके वह सजा हल्की कर देते हैं, तब कवि हो जाते हैं।

—चरित्रहीन

जो असुन्दर है, जो अनैतिक है, जो अकल्याण है, वह किसी तरह कला नहीं है, धर्म नहीं है। कला कलाके लिए, की युक्ति भी किसी तरह सत्य नहीं है।

—निबन्धावली, साहित्य और नीति

संसारमें जो कुछ घटित होता है—और अनेक गन्दी बातें ही घटित होती हैं,—वह किसी तरह साहित्यका उपादान नहीं है। प्रकृतिके स्वभावकी हूबहू नक़ल करना फोटोग्राफी हो सकती है। किन्तु वह क्या तसवीर होगी? दैनिक अखबारोंमें अनेक रोमांच उत्पन्न करनेवाली भयानक घटनाएँ छपती हैं, वह क्या साहित्य हैं?

—निबन्धावली, साहित्य और नीति

जो कुछ घटित होता है, उसकी अविकल तस्वीरको भी मैं जैसे साहित्य वस्तु नहीं कहता, वैसे ही मेरा मत है कि जो घटित नहीं होता अथच समाज या प्रचलित नीतिकी दृष्टिमें जिसका घटित होना अच्छा है, कल्पनाके द्वारा उसकी उच्छृंखल गतिसे भी साहित्यकी बहुत अधिक विडम्बना होती है।

—निबन्धावली, साहित्य और नीति

दुनियामें जो कुछ सत्य ही घटित होता है उसीको बिना विचारे आँख मूँदकर साहित्यका उपकरण बनानेसे वह सत्य तो हो सकता है, पर सत्य-साहित्य नहीं होता।

—निबन्धावली, साहित्य और नीति

आधुनिक साहित्य—दुर्नीतिका वह प्रचार नहीं करता। थोड़ा-सा थहाकर देखनेसे उसकी सारी दुर्नीतिके मूलमें शायद यही एक चेष्टा मिलेगी कि वह मनुष्यको मनुष्य ही सिद्ध करना चाहता है।

—निबन्धावली, आधुनिक साहित्यकी कैफ़ियत

आत्मरक्षाके बहाने भी मनुष्यका असम्मान करना मुझसे नहीं होता। लोग कहते हैं कि मैं पतिताओंका समर्थन करता हूँ। समर्थन मैं नहीं करता; केवल उनका अपमान करनेको मेरा मन नहीं चाहता। मैं कहता हूँ कि वे भी मनुष्य हैं, उन्हें भी फ़रियाद करनेका अधिकार है और महाकालके दरबारमें इसका विचार एक दिन अवश्य होगा।

—निबन्धावली 'शेष प्रश्न'

भाषा जिस जगह दुर्बल और शंकित है, सत्य जिस देशमें नक़ाब डाले बिना पग नहीं बढ़ा सकता, लेखकोंका दल जिस राज्यमें इतनी बड़ी उंछवृत्ति करनेके लिए बाध्य है, उस देशमें राजनीति, धर्म-नीति, समाजनीति सब ही यदि एक दूसरेका हाथ पकड़े केवल नीचेकी ओर उतरती जायँ तो इसमें आश्चर्य होनेकी क्या बात है?

—निबन्धावली—सत्य और मिथ्या

कोरी कल्पना केवल गढ़ ही सकती है, उसमें (साहित्य रचनामें) प्राण नहीं डाल सकती—ढो सकती है, पर राह नहीं दिखा सकती।

—चरित्रहीन

• • • समाज

× × × कि हमारा हिन्दू समाज आज भी जीवित है—

अपना अस्तित्व मात्र बनाये रखना ही क्या जीवनकी चरम सार्थकता है? इस तरह तो बहुत-सी जातियाँ अपना अस्तित्व बनाये हुए जीवित हैं। कोरकू हैं, कोल, भील, संथाल हैं, प्रशान्त महासागरके अनेक छोटे-मोटे द्वीपोंकी अनेक छोटी-मोटी जातियाँ भी मनुष्य-सृष्टिके शुरूसे अभीतक वैसी ही बनी हुई हैं। उन जातियोंमें भी ऐसे सब कठोर आईन-कानून मौजूद हैं जिन्हें सुनकर शरीरका रक्त पानी हो जाता है। उम्रके लिहाजसे वे जातियाँ यूरोपकी अनेक जातियोंके अतिवृद्ध पितामहोंकी अपेक्षा भी प्राचीन हैं, और हमसे भी अधिक पुरातन हैं। किन्तु इसीलिए ये जातियाँ हमारी अपेक्षा सामाजिक आचार-व्यवहारमें श्रेष्ठ हैं, ऐसा अद्भुत संशय, मैं समझता हूँ, किसीके मनमें न उठता होगा। × × (जो समाज प्रतिदिन आँख मूँदकर नर और नारियोंकी बलि लेता रहता है) जो समाज अपनेको इतना-सा भी उदार बनानेकी शक्ति नहीं रखता, उस लँगड़े निर्जीव समाजके लिए मैं अपने मनमें किञ्चित्-मात्र गौरवका अनुभव नहीं कर सकता।

—श्रीकान्त पर्व १

संसारके सभी स्त्री-पुरुष एक साँचेमें ढले नहीं होते, उनके सार्थक होनेका रास्ता भी जीवनमें केवल एक नहीं होता।

—श्रीकान्त पर्व २

बाहर-ही-बाहर रहकर बाहरके समाजके साथ इन लोगों (दरिद्रों) की तुलना करके समझते हो कि इन लोगोंके कष्टोंकी शायद सीमा ही

नहीं । धनी ज़मींदार पुलाव खाया करता है । वह अपनी किसी दरिद्र प्रजाको बासी भात खाते देखकर सोचता है कि 'इसके दुःखकी कोई सीमा नहीं हैं'—जिस तरह वह भूलता है, उसी तरह तुम भी भूलते हो ।

—श्रीकान्त पर्व २

तुम जैसे लोग ही समाजकी अधिक निन्दा करते फिरते हैं, जो समाज से कोई सम्बन्ध ही नहीं रखते, बल्कि उसकी ओरसे सर्वथा उपेक्षित रहते हैं । तुम लोग न तो अच्छी तरह पराये समाजको जानते हो और न अच्छी तरह अपने ही समाजको ।

—श्रीकान्त, पर्व २

घरकी मालकिन सब लोगोंसे ख़राब खाती-पीती है, कभी-कभी तो नौकरोंकी अपेक्षा भी । बहुधा उसे नौकरोंसे भी अधिक मेहनत करनी पड़ती है; किन्तु, तुम (मर्द) इस दुःखसे व्याकुल होकर रोते हुए मत फिरो; हम लोगोंको दासीके समान ही बनी रहने दो, दूसरे देशों-जैसी रानी बना डालनेकी चेष्टा मत करो ।

श्रीकान्त पर्व २

एकका मर्मान्तक दुःख जब कि दूसरेके लिए उपहासकी वस्तु हो जाता है, तो इससे बढ़कर, ट्रैजेडी संसारमें और क्या हो सकती है? फिर भी होता यही है । लोक-समाजमें रहते हुए भी जिस आदमीने लोकाचारको नहीं माना—विद्रोह किया है, वह फ़रियाद भी करे तो किससे ?

—श्रीकान्त, पर्व ३

× × अफसोस तो इस बातका है कि मनुष्य, पड़ोसी होकर, अपने दूसरे पड़ोसीकी जीवन-यात्राका मार्ग, बिना किसी दोषके, इतना दुर्गम और दुःखमय बना दे सकता है, ऐसी हृदयहीन निर्दय बर्बरताका उदाहरण दुनियामें शायद सिर्फ़ हिन्दू-समाजके सिवा और कहीं न मिलेगा ।

—श्रीकान्त, पर्व ३

मनुष्यका मरना मुझे उतनी चोट नहीं पहुँचाता जितनी कि मनुष्यत्वकी मौत ।

श्रीकान्त, पर्व ३

सभ्य समाजने शायद इस बातको अच्छी तरह समझ लिया है कि मनुष्यको बगैर पशु बनाये उससे पशुओंका काम ठीक तौरसे नहीं लिया जा सकता ।

—श्रीकान्त, पर्व ३

(श्राद्धका दान लेनेके कारण जाति-बहिष्कृतकी फ़रियाद)—उसके पुरखोंमेंसे किसीने श्राद्धका दान लिया था,—बस यही क़सूर हो गया—और श्राद्ध तो हिन्दूका अवश्य कर्त्तव्य है, कोई तो उसका दान लेगा ही, नहीं तो वह श्राद्ध ही असिद्ध और निष्फल हो जायगा । फिर दोष इसमें कहाँ है ?—और दोष अगर हो ही, तो आदमीको लोभमें फँसाकर उस काममें प्रवृत्त ही क्यों किया जाता है ?

—श्रीकान्त, पर्व २

इस संसारमें जिन लोगोंमें कुतूहल कम होता है वे साधारण मनुष्य समाजके कुछ बाहर होते हैं ।

—बड़ी बहन

काले साँपकी केंचुलको लाठी मारनेसे कोई लाभ नहीं । सड़े हुए मठेकी दुर्गन्धका अपवाद दूधके सिर मढ़ना भूल है । बल्कि देखना तो यह चाहिए कि यह अज्ञान ब्राह्मणोंको भी कहाँ तक खींच ले गया है !

—पण्डितजी

जो पीड़ितोंकी रक्षा नहीं करता, जो दुखियोंको केवल दुःखके मार्गपर ढकेल देता है, उसीको हम लोग जो 'समाज' कहनेका महापाप करते हैं, वह हम लोगोंको बराबर रसातलकी ओर ही लिये जा रहा है ।

—रमा

किसकी इच्छा नहीं होती कि अपनी लड़कियोंको यथासमय अच्छी जगह ब्याह दें मगर दें कैसे ? समाज कहता है कि लड़कीकी उम्र हो चुकी, ब्याह कर दो, मगर ब्याहनेका इन्तज़ाम नहीं कर देता।

—परिणीता

ऐसे समाजसे तो जात जाना ही अच्छा है। पेट भरे या भूखे रहें, शान्तिसे तो रह सकते हैं। जो समाज दुःखीका दुःख नहीं समझता, आफ़त-विपतमें हिम्मत नहीं बँधाता; वह समाज मेरा नहीं—मुझ-जैसे ग़रीबोंका नहीं है; वह समाज तो बड़े आदमियोंका है।

परिणीता

जो है नहीं, उसे मैं नहीं मानता। भगवान् नहीं हैं, देवी-देवता भी झूठी कल्पना है। परन्तु जो हैं, उन्हें तो अस्वीकार नहीं करता। समाजपर मैं श्रद्धा करता हूँ, मनुष्यकी मैं पूजा करता हूँ। जानता हूँ कि मनुष्यकी पूजा करना ही मनुष्य-जन्मकी सार्थकता है।

—गृहदाह

हमारी बातोंसे पाठकोंको यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि हम तलाक़ (Divorce) को कोई अच्छी चीज़ बतला रहे हैं। मारपीट भी कोई अच्छी चीज़ नहीं है और अवश्य ही कोई इस बातकी कामना नहीं करता कि समाजमें मार-पीट बराबर होती रहे। लेकिन जब हम लोगोंमें स्त्रीका त्याग कर देना प्रचलित है, तब वह त्याग स्त्री और पुरुष दोनोंके ही पक्षमें क्यों उचित नहीं है ? स्त्री क्यों न अपने पुरुषका त्याग कर सके ?

—नारीका मूल्य

विशेषतः इस देशके पुरुष जो स्वयं ही कायर और भीरु होते हैं, जो अन्यान्य देशोंके पुरुषोंकी तुलनामें नारियोंकी ही तरह निरुपाय होते हैं, जो नारियोंके सामने पुरुषोंके रूपमें अपना परिचय देनेकी यथार्थ

क्षमतासे वंचित हैं, वे कायरोंकी तरह अपनी अपेक्षा अधिक दुर्बल और निरुपाय (स्त्री) का ही उत्पीड़न करके अपने कर्त्तव्यके पालनका आनन्द प्राप्त करना चाहेंगे ।

—नारीका मूल्य

जिस पुरुषने यह जानकर कि मुझसे मार्गमें स्त्रीकी रक्षा नहीं हो सकेगी—"पथि नारी विवर्जिता" (अर्थात् मार्गमें नारीको ले जाना वर्जित है) वाला शास्त्र बनाया है, उसके शास्त्रका भी उतना ही मूल्य मानना उचित है, और यही सबसे अच्छा न्याय है ।

—नारीका मूल्य

यह जो मनुष्यको अकारण छोटा और नीचा समझना है, यह जो घृणा है, यह जो विद्वेष-भाव है, इस अपराधको भगवान् हरगिज़ माफ़ नहीं कर सकते ।

—अधिकार

समाजको चोट पहुँचाना और समाजके दम्भपर प्रहार करना एक बात नहीं है । सभीका एक सच्चा अधिकार होता है । समाज उद्धत होकर जब अपने अधिकारकी सच्ची सीमाको लाँघ जाता है, तब उसको चोट पहुँचानी ही पड़ती है । इससे समाज मरता नहीं, उसके होश ठिकाने होते हैं, मोह छूट जाता है ।

—चरित्रहीन

सभी कामोंमें अपनी बुद्धि लड़ानेसे जैसे समाज नहीं रह सकता, वैसे ही समाज भी अगर सब समय, सभी कामोंमें अपना मत चलाना चाहे, तो उससे भी मनुष्य टिक नहीं सकता । क्या मनुष्य ग़लती करना, अन्याय करना जानता है, और समाज नहीं जानता ?

—चरित्रहीन

हिन्दुओंकी समस्या यह नहीं है कि किस तरह यह अस्वाभाविक

मिलन (हिन्दू-मुसलिम) संघटित होगा, हिन्दुओंकी समस्या यह है कि किस तरह वे संघबद्ध हो सकेंगे, और हिन्दू धर्मावलम्बी किसी भी व्यक्ति को छोटी जाति कहकर उसका अपमान करनेकी उनकी दुर्बुद्धि किस तरह और कब जायगी। और सबसे बड़ी समस्या यह है कि हिन्दूके अन्तःकरणका सत्य किस तरह उसके प्रतिदिनके प्रकाश्य आचरणमें फूलकी तरह विकसित हो उठनेका सुयोग पावेगा। जो सोचता हूँ, वह कहता नहीं, जो कहता हूँ वह करता नहीं, जो करता हूँ उसे स्वीकार नहीं करता—आत्माकी इतनी बड़ी दुर्गति बरक़रार रहते हुए समाज-देहके असंख्य छिद्र स्वयं भगवान् आकर भी बन्द नहीं कर सकेंगे।

—शरत् निबन्धावली, वर्तमान हिन्दू-मुसलमान समस्या

जात और कुल यदि सत्य है; तो क्या दो आदमियोंके सारे जीवनका सुख-दुःख ही झूठ है।

—ब्राह्मणकी बेटी

• • • नारी

न जानते हुए नारीके कलंककी बातपर अविश्वास करके संसारमें ठगा जाना भला है, किन्तु विश्वास करके पापका भागी होना अच्छा नहीं।

—श्रीकान्त, पर्व १

स्त्रियोंकी चरम पूर्ति क्या विवाहमें ही है?

—ब्राह्मणकी बेटी

"पुरुष कितना ही बुरा क्यों न हो, यदि वह भला होना चाहता है तो उसे कोई रोकता नहीं; तब फिर हमलोगों (स्त्रियां) की पारी आने पर सब मार्ग क्यों बन्द हो जाते हैं?"

— श्रीकान्त, पर्व २

स्त्रियाँ मर्द नहीं हैं—दोनोंके आचार-व्यवहार एक ही तराजूसे नहीं तौले जा सकते; और तौले भी जायँ तो कोई लाभ नहीं।

- श्रीकान्त, पर्व २

पुरुष-जाति चिरकालसे ही उच्छृंखल रही है,—चिरकालसे ही कुछ-कुछ अत्याचारी भी रही है; किन्तु इसीलिए तो स्त्रीके पक्षमें भाग खड़े होनेकी युक्ति काम नहीं दे सकती। स्त्री-जातिको सहन करना ही होगा; नहीं तो संसार नहीं चल सकता।

—श्रीकान्त, पर्व २

इस देशकी स्त्रियाँ अपने-आपको छोटा समझनेके कारण छोटी नहीं हो गई हैं। सच यह है कि तुम्हीं (पुरुषों) लोगोंने उन्हें छोटा समझ कर छोटा बना दिया है, और तुम खुद भी छोटे हो गये हो।

—श्रीकान्त, पर्व २

समस्त रमणियोंके अन्तरमें 'नारी' वास करती है या नहीं, यह ज़ोरसे कहना अत्यन्त दुःसाहसका काम है। किन्तु नारीकी चरम सार्थकता मातृत्वमें है, यह बात खूब गला फाड़ करके प्रचारित की जा सकती है।

—श्रीकान्त, पर्व २

शायद अत्यन्त दुःखमेंसे ही नारियोंका सच्चा और गहरा परिचय मिला करता है। उन्हें पहचान लेनेकी ऐसी कसौटी भी और कुछ नहीं हो सकती, और पुरुषके पास उनका हृदय जीत लेनेके लिए इतना बड़ा अस्त्र भी और कोई नहीं होगा।

—श्रीकान्त, पर्व ३

"अपनेको पहचाननेमें भी तो देर लगती है—"

"देर लगने दो, फिर भी पुरुष पहचान जाते हैं। पर औरतोंपर तो ऐसा अभिशाप है कि मरते दम तक उनकी ज़िन्दगी अपनी तक़दीर समझनेमें ही बीत जाती है।

—षोडशी

(स्त्री पात्रके मुँहसे) स्त्रियोंका कोई विश्वास नहीं। मैं समस्त स्त्री-जातिको दोष देती हूँ,—विधाताको दोष देती हूँ कि उन्होंने क्यों इतने कोमल और जलके समान तरल पदार्थसे नारीका हृदय गढ़ा था।

—बड़ी बहन

स्त्री शरीर धारण करके (पति-पुत्रको बनाकर खिलाने) इससे अधिक सुखकी बात न तो वह (एक स्त्री पात्र) सोच ही सकती है, और न उसकी कामना ही करती है। वह सोचती है कि जो स्त्री नित्य यह काम करती है, उसके लिए इस संसारमें और कुछ भी बाक़ी नहीं रह जाता।

—पण्डितजी

स्त्रियोंके लिए सबसे बड़ी सीखनेकी बात है क्षमा करना।

—पण्डितजी

इतना अधिक रुपया एक आदमी (निःस्वार्थ भावसे) किसी दूसरे आदमीको दे दे, इस बातको कोई भी स्त्री प्रसन्नचित्तसे स्वीकार नहीं कर सकती।

—परिणीता

औरतोंकी छाती फटे तो फटे पर मुँह नहीं फटता।

—परिणीता

फिर भी सब तरहका अपराध उसके (स्त्री) माथेपर लादकर वह उसका विचार कर रहा था, और अपनी ही ईर्ष्यासे, अपने ही क्रोधसे, अपने ही अभिमान और अपमानसे अपने-आप जल-मर रहा था। शायद, इसी तरह संसारके सभी पुरुष स्त्रियोंका विचार करते हैं और इसी तरह जलते हैं।

—परिणीता

इस अभागे देशके लिए आज भी अगर कोई गौरव करनेकी चीज़ मौजूद है, तो वह तुम्हारी जैसी (सती) स्त्रियाँ। ऐसी चीज़ शायद और कोई भी देश नहीं दिखा सकता।

—गृहदाह

मणि-माणिक्य बहुत मूल्यवान वस्तुएँ हैं, क्योंकि वे दुष्प्राप्य हैं। इस हिसाबसे नारीका मूल्य अधिक नहीं है, क्योंकि यह संसारमें दुष्प्राप्य नहीं है।

—नारीका मूल्य

नारीका मूल्य क्या है? अर्थात् वे कहाँतक सेवा-परायण, स्नेह-शील, सती और दुःख तथा कष्ट सहते हुए मौन रहती हैं? अर्थात् उनके

द्वारा पुरुषको कहाँ तक सुख और सुभीता हो सकता है और कहाँ तक वे रूपसी हैं ? पुरुषकी लालसा और प्रवृत्तिको वे कहाँतक निबद्ध तथा तृप्त रख सकती हैं ?—हम यह बात पृथ्वीका इतिहास खोलकर प्रमाणित कर सकते हैं कि स्त्रियोंका मूल्य निश्चित करनेके लिए इसके सिवा और कोई मार्ग है ही नहीं।

—नारीका मूल्य

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

अर्थात् जहाँ स्त्रियोंकी पूजा होती है, वहाँ देवता रमण करते हैं और जहाँ नहीं होती, वहाँ सारे काम निष्फल होते हैं।

अवश्य—हम लोग पूजा तो करते हैं, लेकिन किस तरह करते हैं ? इसपर चर्चा करनेपर ऐसी बहुत-सी बातें निकल पड़नेकी सम्भावना रहती है जिन्हें बाहर (विदेशी) लोगोंको सुनानेसे किसी तरह काम नहीं चल सकता।

—नारीका मूल्य

जिस धर्मने बुनियाद ही रक्खी है आदिम जननी हौवाके पाप पर, और जिस धर्मने नारीको बैठा रक्खा है संसारके समस्त अधःपतनके मूलमें, उस धर्मके सम्बन्धमें जिन लोगोंके मनमें यह विश्वास है कि सच्चा धर्म यही है, उन लोगोंसे यह कभी हो ही नहीं सकता कि वे नारी-जातिको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखें। ऐसे लोगोंकी श्रद्धा केवल उतनी ही हो सकती है जितनेमें उनका स्वार्थ लगा हुआ है। इससे अधिकको चाहे श्रद्धा कहो, चाहे उनका न्यायोचित अधिकार कहो, वह न तो पुरुषने उन्हें आजसे हज़ार बरस पहले दिया है, और न आजके हज़ार बरस बाद ही देगा।

—नारीका मूल्य

पुरुष जो कुछ चाहते हैं, और जिसके बारेमें वे यह प्रचार करते हैं कि यह धर्म है, नारियाँ उसीपर विश्वास कर लेती हैं, और पुरुषोंकी इच्छाको ही अपनी इच्छा मानकर भूल करती हैं, और भूल करके सुखी होती हैं। हो सकता है इसीसे नारियोंका गौरव बढ़ता हो, लेकिन उस गौरवसे पुरुषोंका अगौरव दब नहीं सकता।

—नारीका मूल्य

आश्चर्य तो इस बातका है कि इतना अत्याचार, अविचार और पैशाचिक निष्ठुरता सहन करनेपर भी स्त्रियाँ सदासे पुरुषोंके साथ स्नेह करती आई हैं, उनपर श्रद्धा रखती आई हैं, उनकी भक्ति करती आई हैं और उनका विश्वास करती आई हैं। जिसे वह पिता कहती है, भाई कहती हैं, स्वामी कहती है, जान पड़ता है कि उसके सम्बन्धमें कभी स्वप्नमें भी उन्हें इस बातका ध्यान नहीं हुआ कि वह इतना अधिक नीच और ऐसा प्रवंचक है। मालूम होता है कि इसी जगह उसका मूल्य है।

—नारीका मूल्य

यदि कहीं कठोर अत्याचार और अविचारके बदलेमें भी स्नेह और प्रेम हो सकता है, तो वह स्त्रियोंमें ही हो सकता है।

—नारीका मूल्य

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम्॥ —मनुस्मृति

अर्थात् सन्तान जनना, जने हुओंका पालन करना और नित्यकी लोकयात्रा चलाना ये स्त्रीके काम हैं।

नारियोंका सम्मान स्वयं उनके कारण नहीं होता, बल्कि वह उनके सन्तान और पुत्र-प्रसव करने पर निर्भर करता है।

—नारीका मूल्य

नारियोंका वास्तविक मूल्य तो उस समय था जब वे पुरुषोंके मुखसे 'देवी' सम्बोधन सुनकर ही गद्‌गद नहीं हो जाती थीं, बल्कि वह पुरुषोंको मुँहसे कही हुई बात कार्य रूपमें परिणत करनेके लिए विवश करती थीं।

—नारीका मूल्य

नरकका द्वार कौन ? स्त्री।

—जगद्‌गुरु शंकराचार्य

ठीक ही तो है। चाहे जिस कारणसे हो, जो नारी केवल एक बार भी भूल करती है, उसके साथ हिन्दू किसी प्रकारका सम्पर्क नहीं रखता। इसके उपरान्त क्रमशः जब वह भूल उसके जीवनमें पापरूपसे सुप्रतिष्ठित हो जाती है, और जब वह वेश्या हो जाती है, तब फिर इस वेश्याके अभावमें हिन्दूका स्वर्ग भी सर्वांग सुन्दर नहीं होता। उसकी इतनी अधिक आवश्यकता मानी जाती है।

—नारीका मूल्य

इस देशके लोगोंने जिस प्रकार आदरपूर्वक श्रीकृष्णके 'काला सोना,' 'काला माणिक' आदि अष्टोत्तर शत नाम रखे थे, हम समझते हैं कि संस्कृत साहित्यमें भी वेश्याके आदरपूर्ण नाम शायद उससे कम नहीं हैं। इन्हीं सब बातोंसे यह समझा जा सकता है कि स्वार्थपरता और चरित्रगत पापबुद्धि नर और नारीमेंसे किसके अधिक हैं, और किसे अधिक दंड देना आवश्यक है।

—नारीका मूल्य

चाहे कोई देश हो, चाहे कोई जाति हो, जब समाजमें नारीका स्थान बहुत नीचा हो जाता है, तब उसके साथ ही साथ शिशुओंका स्थान भी नीचे उतर आता है।

—नारीका मूल्य

मिथ्याकी कभी जीत नहीं होगी। यदि इस हिसाबसे जाँचकर देखा जाय तो नारीको जो मूल्य पुरुष अब तक देता आया है, उससे यदि अब तक बराबर उसका (पुरुष) भला ही होता आया हो तो निश्चय ही यह मानना पड़ेगा कि वही नारीका प्राप्य मूल्य है। और नहीं तो यह बात स्वीकृत करनी पड़ेगी कि पुरुषोंने नारीको अब तक ठगा है, उसे सताया है, साथ ही साथ समाजपर अकल्याण भी लाकर लाद दिया है।

—नारीका मूल्य

देखा जाता है कि जो समाज जितना ही नीचा होता है, और जिस समाजमें नारीकी दशा जितनी ही अधिक दुःखपूर्ण तथा कष्टमय होती है, उसमें नारीका सौन्दर्य भी उतना ही अल्प तथा उतना ही अधिक क्षण-स्थायी होता है।

—नारीका मूल्य

ज्यों-ज्यों समाजमें नारीका स्थान नीचे उतरता आता है, त्यों-त्यों नर और नारी दोनोंके जीवित रहनेका काल भी बराबर कम होता जाता है।

—नारीका मूल्य

उस देशका बड़ा दुर्भाग्य है जिस देशकी नारियाँ स्वयं बिना खाये पुरुषोंको नहीं खिला पातीं, और जहाँ साथ बैठकर खाना पड़ता है।

—दत्ता

नारी जातिको कभी खाली हाथ नहीं बैठना चाहिए।

—दत्ता

जिस चीज़से एक बच्चेको बहकाया जा सकता है, उसीसे लाख बच्चोंको भी बहकाया जा सकता है। संख्याका बढ़ जाना ही बुद्धि बढ़नेका प्रमाण नहीं है। एक दिन जिन लोगोंने कहा था कि नर-नारीके प्रेमका इतिहास ही मानव-सभ्यताका सबसे सत्य इतिहास है, उन्होंने

सबसे बढ़कर सत्यका पता पाया था; किन्तु जिन लोगोंने यह घोषणा की कि पुत्रके लिए भार्याकी आवश्यकता है, वे स्त्रियोंका सिर्फ़ अपमान ही करके शान्त नहीं हुए, बल्कि अपने बड़े होनेका रास्ता भी चिरकालके लिए बन्द कर गये।

—शेष प्रश्न

संसारमें होने वाली अनेक घटनाओंमेंसे विवाह भी एक घटना है, उससे ज्यादा कुछ नहीं। उसीको जिस दिनसे नारीका सर्वस्व मान लिया गया है, उसी दिनसे स्त्रियोंके जीवनकी सबसे बड़ी ट्रैजडी शुरू हो गयी है।

—शेष प्रश्न

(नारी से) जीवनमें कल्याणको कभी अस्वीकार न करना। उसका सत्य-रूप आनन्दका रूप है। उसी रूपमें वह दिखाई देता है,—वह और किसी तरह पहचाना भी नहीं जा सकता।

—शेष प्रश्न

स्त्रियाँ जब श्रद्धा-भक्ति करने लगती हैं तो शिकायत नहीं करतीं। देवी-देवता भी कम कष्ट नहीं देते, फिर भी वे पूजा बन्द नहीं करतीं, कहती हैं—'दुःख उन्होंने अच्छेके लिए ही दिया है।'

—विप्रदास

अनेक दुःखोंसे ही नारी अपना धर्म नष्ट करनेके लिए तैयार होती है, और जिस लिए होती है, वह पर-पुरुषका रूप नहीं, किसी बीभत्स प्रवृत्तिका लोभ भी नहीं। जब वे अपनी इतनी बड़ी वस्तुको नष्ट करती हैं, तो बाहर जाकर किसी आश्चर्यजनक वस्तुको पानेके लोभसे नहीं, सिर्फ़ किसी बातसे अपनेको मुक्त करनेके लिए ही इस दुःखको सिरपर उठा लेती हैं।

—पत्रावली-लीलारानी गंगो० को

स्वर्गीय गिरीश बाबूने अपने 'आत्म दमन' में लाख बातकी एक बात कही है—"अबलाएँ बड़ी लालची होती हैं, वह मरनेपर भी खाती हैं।" औरतकी जातिको उन्होंने पहचान लिया था।

—पन्नावली-लीलारानी गंगो० को

लड़कियाँ (फैशनेबुल) में साढ़े पन्द्रह आने कुरूपा होती हैं। सिर्फ साबुन, पाउडर और कपड़े-लत्तों और अनुनासिक गलेसे जहाँ तक चल जाय।

—पत्रावली-लीलारानी गंगो० को

"मैं स्त्रीकी जातिकी हूँ। स्त्रियाँ भला क्या बीमार पड़ती हैं, या इस तरह (कठोर परिश्रम करनेसे) मर जाती हैं? तुमने क्या कभी सुना कि अयत्नसे, अत्याचारसे कोई औरत मर गई है। भगवान्ने स्त्रियोंके शरीरमें क्या प्राण दिये हैं जो जायेंगे? मुझे तो जान पड़ता है, इस स्त्री-जातिको गलेमें रस्सी बाँधकर दस-बीस साल-तक टाँग रक्खा जाय तो भी वह नहीं मर सकती।"

—चरित्रहीन

हिन्दू-घरकी किसी भी औरतको शायद इसके लिए (आलस्य) बदनाम नहीं किया जा सकता। जानते हो, चाहे सगा हो, चाहे गैर; किसी भी पुरुषका भोजन नहीं हुआ है, सुनकर तिस्पर स्त्री मर रही होगी तो भी उसे खिलाने-पिलानेके लिए उठ खड़ी होगी।

—चरित्रहीन

सन्तान-धारण करनेके लिए जो लक्षण सबसे अधिक उपयोगी है, वह है नारीका रूप। सारे जगत्के साहित्यमें, काव्य में, यह वर्णन ही उसके रूपका वर्णन है।

—चरित्रहीन

विश्वका हरएक अणु परमाणु निरन्तर नये रूपमें अपनी सृष्टि करता

चाहता है। वह बिना थके बराबर इसी उद्योगमें लगा रहता है कि किस तरह अपनेको विकसित करे। इसी कारण पुरुष, नारीमें जब ऐसा कुछ पाता है, जिसमें जाने या बिना जाने, वह अपनेको और भी सुन्दर, और भी सार्थक बना सकेगा तो उस लोभको वह किसी तरह रोक नहीं सकता।

—चरित्रहीन

पुरुषके मनका भाव, उसका अन्याय और अविचार सभी जगह समान है। नारीको उसके न्याय-संगत अधिकारसे न्यूनाधिक प्रायः सभी देशोंके पुरुषने वंचित कर रखा है। (लेकिन फिर भी) मैं जानता हूँ इस वंचिता नारीका दान न मिलनेपर इस संसारव्यापी नरमेध (विश्व युद्ध) के प्रायश्चित्तका परिणाम आज क्या होता!

—निबन्धावली–स्वराज्यकी साधनामें नारी

मर्दोंके लिए चकमा देनेका रास्ता खुला है, लेकिन जिसे कहीं, कभी किसी तरह छुटकारेका मार्ग नहीं है, वह है केवल नारी। इसीसे सतीत्व की महिमाका प्रचार ही विशुद्ध साहित्य हो उठा है।

—निबन्धावली–साहित्यमें आर्ट और दुर्नीति

नारीका एक तरहका रूप होता है, जिसे जवानीके दूसरे सिरेपर पहुँचे बिना पुरुष कभी किसी दिन नहीं देख पाता।

—देना पावना

भगवान्‌पर भरोसा रखनेके लिए जितना ज़ोर चाहिए, उतना ज़ोर औरतोंकी देहमें नहीं होता।

—विराज बहू

जिस तरह नारीके दैहिक सौन्दर्यके समान सुन्दर वस्तु इस संसारमें नहीं है, उसी तरह इसकी विकृतिके समान असुन्दर वस्तु भी शायद ही पृथ्वीपर कोई हो।

—शेष प्रश्न

••• सतीत्व

रामायण, महाभारत और पुराणों आदिमें बार-बार इस बातकी आलोचना की गई है कि यह सतीत्व नारीका कितना बड़ा धर्म है। यहाँ तो स्वयं भगवान् तक इस सतीत्वकी चपेटमें आकर अनेक बार अस्थिर हो चुके हैं।

—नारीका मूल्य

अँग्रेज़ भी कहते हैं कि आचरणकी पवित्रता (Charity) होनी चाहिए, पर वे इसके द्वारा पुरुष और स्त्री दोनोंका ही निर्देश करते हैं। और हमारे देशमें जिस शब्दका अर्थ 'सतीत्व' होता है, वह केवल नारियोंके लिए है। यह ठीक है कि शास्त्रकार लोग वनोंमें रहते थे, लेकिन फिर भी वे लोग समाजको पहचानते थे और इसीलिए वे लोग एक शब्द बनाकर भी अपने जाति-भाइयों अर्थात् पुरुषोंको संकट या परेशानी (Inconvenience) में नहीं डाल गये।

—नारीका मूल्य

शास्त्रोंने कहा है कि नारी केवल मातृत्वके कारण ही पूजनीया होती है। इसलिए (विधवा होने पर) जब मातृत्वका सुयोग ही न रहा तब उसे लेकर और क्या होगा, सती हो जाना ही उचित है। और फिर प्रचार किया जाने लगा—"जिस देशमें स्त्रियाँ हँसती-हँसती चितापर जाकर बैठ जाया करती थीं, और अपने स्वामीके चरण-कमलोंको अपनी गोदमें लेकर प्रफुल्लित वदनसे अपने-आपको भस्मसात् कर दिया करती थीं!—" इत्यादि।

लेकिन यदि यह सच था, तो स्वामीकी मृत्युके बाद ही उसकी

विधवाको एक कटोरा भाँग और धतूरा पिलाकर नशेमें बदहोश क्यों कर दिया जाता था? जब वह श्मशानकी ओर जाती थी तब कभी तो हँसती थी, कभी रोती थी, और कभी रास्तेमें ही ज़मीनपर लेटकर सो जाना चाहती थी। यही उसकी हँसी थी और यही उसका सहमरणके लिए जाना था! इसके बाद चितापर बैठाकर कच्चे बाँसकी मचिया बनाकर दबा रक्खा जाता था, क्योंकि डर रहता था कि शायद सती होनेवाली स्त्री दाहकी यंत्रणा न सह सके। चितापर बहुत अधिक राल और घी डालकर इतना अधिक धुँआ कर दिया जाता था कि जिसमें उसकी यंत्रणा देखकर कोई डर न जाय, और दुनियाँ भरके इतने अधिक ढोल-ढक्के, करताल-शंख आदि ज़ोर-ज़ोरसे बजाये जाते थे कि कोई उसका चिल्लाना, रोना-धोना, या अनुनय-विनय न सुनने पावे।

—नारीका मूल्य

सतीत्व तो सिर्फ़ देहमें ही सीमित नहीं है, वह मनसे भी तो होना चाहिए। मन-वचन-कायसे प्रेम बग़ैर हुए तो उसका ऊँचे स्तरपर पहुँचना सम्भव नहीं। आप क्या वास्तवमें यही समझते हैं कि मन्त्र पढ़कर ब्याह हो जानेसे कोई भी भारतीय स्त्री किसी भी भारतीय पुरुषको प्रेम कर सकती है? यह क्या तालाबका पानी है जो किसी भी पात्रमें भरकर मुँह बन्द कर देनेसे काम चल जायगा।

—अधिकार

सतीत्वको मैं भी तुच्छ नहीं कहता; किन्तु इसीको नारी-जीवनका चरम और परम श्रेय जाननेको भी मैं कुसंस्कार समझता हूँ। कारण, मनुष्यका, मनुष्य होनेका जो स्वाभाविक और सच्चा दावा है, उसे चकमा देकर जिस किसीने जिस किसी चीज़को बड़ा करके खड़ा करनेकी चेष्टा की है, उसने उसे भी धोखा दिया है, और आप भी ठगा गया है।

—निबन्धावली—स्वराज्यकी साधनामें नारी

परिपूर्ण मनुष्यत्व सतीत्वकी अपेक्षा बड़ा है।.........मैंने सती नारीको चोरी करते, जुआ खेलते, जाल करते और झूठी गवाही देते देखा है, और ठीक इससे उलटा देखना भी मुझे नसीब हुआ है।

—निबन्धावली—साहित्यमें आर्ट और दुर्नीति

एकनिष्ठ प्रेम और सतीत्व ठीक एक ही वस्तु नहीं हैं।

—निबन्धावली—साहित्यमें आर्ट और दुर्नीति

• • • पति-पत्नी

पति न्याय-अन्याय कुछ भी करें, उनके प्रेमकी उपेक्षा करनेकी स्पर्धा किसी देशकी स्त्रियोंमें नहीं है। मुझे तो मालूम होता है कि उस चीज़के खोनेसे मरना कहीं अच्छा—उसके खोये जानेके बाद भी (पत्नीका) जीते रहना सिर्फ़ विडम्बना है।

—दर्पचूर्ण

"मैं (एक निर्वासिता पत्नी) आपसे यह बात जानना चाहती हूँ कि पति जब एकमात्र बेंतके ज़ोरसे स्त्रीके समस्त अधिकारोंको छीन लेता है और उसे अँधेरी रातमें अकेली घरके बाहर निकाल देता है, तब इसके बाद भी विवाहके वैदिक मंत्रोंके ज़ोरसे उसपर पत्नीके कर्तव्योंकी ज़िम्मेदारी बनी रहती है या नहीं?............"

यह तो ख़ूब मोटीसी बात है कि जहाँ अधिकार नहीं वहाँ कर्तव्य भी नहीं। उन्होंने भी तो मेरे ही साथ उन्हीं मंत्रोंका उच्चारण किया था, किन्तु वह एक निरर्थक बकवाद ही रहा जो उनकी प्रवृत्तिपर,—उनकी इच्छापर तो ज़रा-सी भी रोक नहीं लगा सका।......स्त्रीके नारी-जन्मकी क्या यही चरम सार्थकता है कि वह उसका प्रायश्चित्त करती हुई जीती हुई भी मृतकके समान बनी रहे?.........क्या मेरे पतित्वका कुछ भी अधिकार नहीं है, माता होनेका अधिकार नहीं है; समाज, संसार, आनन्द किसीपर भी मेरा कुछ अधिकार नहीं है? यदि कोई निर्दय, मिथ्यावादी, बदचलन पति बिना अपराधके अपनी स्त्रीको घरसे निकाल दे, तो क्या इसीलिए उसका समस्त नारीत्व व्यर्थ, लँगड़ा, पंगु हो जाना चाहिए?

—श्रीकान्त, पर्व २

हमलोग गृहस्थके घरकी स्त्रियाँ ठहरीं, इसीलिए शारीरिक अच्छाई और बुराईपर उतना ध्यान नहीं देतीं। मर जानेपर कहती हैं कि गंगा-लाभ हुआ है; और जब जीती हैं तब कहती हैं कि अच्छी हैं।

—देवदास

(नव वधू, पतिके बाहर जाते समय)—"मुझे क्या करना होगा, बता जाओ।"

पति—"कुछ भी बता जाना नहीं होगा, आजसे तुम अपने-आप ही समझने लगोगी।"

—परिणीता

'भाण्डार!'—गृहिणीके राज्यकी यही तो राजधानी है।

—गृहदाह

यह सब तुम क्या ढूँढ़ती-फिरती हो भाभी? तुम क्या समझती हो कि बचपनके सब प्रेमोंका आखिरी नतीजा (अच्छा) यही होता है? या आदमी ब्याह करने-करानेका मालिक है? यह सिर्फ़ इसी जन्मका नहीं, भाभी, जन्म-जन्मान्तरका सम्बन्ध है। मैं जिनकी चिरकालकी दासी हूँ उन्हींके हाथ भगवान्‌ने मुझे सौंप दिया है।

—गृहदाह

तुम मेहनतकी कह रही हो भाभी—जिस दिन पति-पुत्र और गृहस्थीके मारे नहाने-खानेकी भी फ़ुरसत न मिलेगी, उस दिन समझोगी, कि स्त्री-जन्म सार्थक हुआ।

—गृहदाह

उसने स्वयं अपने पतिसे कहा है, "मैं तुमसे प्रेम नहीं करती" और उसी क्षण नारीकी सर्वोत्तम मर्यादा भी उसके लिए संसारसे धुल-पुछ कर साफ़ हो गई।

—गृहदाह

मेरी एक बात सुनो बहन, पतिकी इस दिशा (विवाह-पूर्व प्रेम-सम्बन्धों) को कभी किसी दिन अपनी बुद्धिके ज़ोरसे ज़बरदस्ती आविष्कार करनेकी कोशिश न करना। इसमें बल्कि ठगाना अच्छा; पर जीतनेसे कोई लाभ नहीं।

—गृहदाह

विवाह तुम लोगोंके समाजमें (ब्राह्म समाज या पश्चिममें) एक सामाजिक विधान है। इसीसे उसके विषयमें अच्छे-बुरेका विचार हुआ करता है, उसके विधि-विधान युक्ति-तर्कोंसे बदल जाते हैं। परन्तु हम लोगों (हिन्दू) के लिए विवाह धर्म है। पतिको हम बचपनसे ही इसी रूपमें ग्रहण करती आई हैं। यह चीज़ तो बहन, समस्त विचार-तर्कोंसे परेकी चीज़ है।

—गृहदाह

धर्मके मतामत बदलते हैं, पर असल चीज़ कहाँ बदलती है बहन? इससे, इतने लड़ाई-झगड़ोंके होते हुए भी वह मूल वस्तु आज भी समस्त जातियोंकी एक ही बनी हुई है। पतिके दोष-गुणोंका हमलोग (हिन्दू) विचार किया करती हैं, उनके सम्बन्धमें मतामत हमारे भी बदलते रहते हैं—हम भी तो आखिर मनुष्य हैं। परन्तु पति हमारे लिए धर्म हैं, इसीसे वे नित्य हैं। जीवनमें भी नित्य हैं, मृत्युमें भी नित्य। उन्हें तो हम बदल नहीं सकतीं।

—गृहदाह

पतिको जो वास्तवमें धर्म समझकर, परलोककी वस्तु समझकर ग्रहण कर सकी है, उसके पैरोंकी बेड़ी चाहे तोड़ दो और चाहे बँधी रहने दो, उसके सतीत्वकी परीक्षा अपने-आप ही हो गई, समझ लो।

—गृहदाह

पतिको जिस स्त्रीने हृदयसे धर्मके रूपमें विचारना नहीं सीखा;

उसके पैरोंकी जंजीर चाहे हमेशा बँधी ही रहे चाहे खुल जाय और अपने सतीत्वके जहाज़को वह चाहे जितना भी बड़ा क्यों न समझती हो, परीक्षाके दलदलमें पड़नेपर उसे डूबना ही पड़ेगा। वह परदेके अन्दर भी डूबेगी और बाहर भी डूबेगी।

—गृहदाह

जिस देशमें मधुर रसकी धारणा जितनी ही क्षीण होती है, और बन्धन जितना ही क्षणस्थायी और भग्नप्रवण होता है, उस देशमें नर और नारीका पारस्परिक सम्बन्ध भी उसी अनुपातमें और उतना ही हीन होता है।

—नारीका मूल्य

यदि कहीं दूरसे जल लानेकी आवश्यकता होगी, तो कोई फ्रान्सीसी या अंग्रेज़ स्वयं जाकर जल लावेगा। लेकिन हम तो यह काम करते हुए मारे लज्जाके मर ही जायेंगे, और इसके बदलेमें अपनी गर्भवती स्त्रीके कंकालपर एक बड़ा-सा घड़ा लादकर उसे जलाशयकी ओर भेजकर लज्जाका निवारण करेंगे।

—नारीका मूल्य

स्त्रीकी दृष्टिमें अश्रद्धेय और हीन होनेसे बढ़कर दुर्भाग्य संसारमें और है ही नहीं।

—अधिकार

(पति-पत्नीके बीचका सम्बन्ध कटु हो जानेपर) रो-रोकर यौवनमें जोगन बनना लोगोंकी समझमें आता है। पेड़के पत्ते सूखके झड़ जाते हैं और उनके क्षतको नये पत्ते आकर भर देते हैं : यह तो हुआ मिथ्या और बाहरकी लता मर जानेपर भी पेड़से लिपटी रहती है,—कसके चिपटी रहती है—यह हो गया सत्य ?

—शेष प्रश्न

अगर यह कहा जाय कि संसारके किसी देश या जातिमें सम्बन्धके विचारसे स्त्री की अपेक्षा माता या बहन अधिक प्रिय होती है, तो यह बात सुननेमें तो बहुत भली लगेगी; लेकिन वास्तवमें ऐसा कहना मिथ्या ही होगा।

—नारीका मूल्य

पति-पत्नीका अधिकार समान है। यह सच है, लेकिन साथ ही यह भी सच है कि सत्य-सत्य चिल्लानेवाले एक सत्य-विलासी गिरोहने नर-नारीके मुँहके द्वारा और तरह-तरहके आन्दोलनोंसे उस सत्यको इतना गन्दा कर दिया है कि आज उसको मिथ्या कहनेको जी चाहता है।

—अधिकार

सत्य न तो पतिको त्यागनेमें है, और न तो पतिकी दासी-वृत्ति करनेमें,—ये दोनों ही सिर्फ दायें-बायेंके रास्ते हैं, गन्तव्य स्थान तो अपने-आप ढूँढ़ लेना पड़ता है, तर्क करके उसका पता नहीं लगाया जा सकता।

—शेष प्रश्न

पतिको त्याग देना कोई बड़ी बात नहीं, उसे फिरसे पानेकी साधना ही स्त्रीके लिए परम सार्थकता है। अपमानका बदला लेनेमें ही स्त्रीकी वास्तविक मर्यादा नष्ट होती है, अन्यथा वह तो कसौटी है जिसपर जाँच कर प्रेमकी क़ीमत आँकी जाती है। और फिर यह कैसा आत्मसम्मानका भाव कि जिसे असम्मानके साथ अलग कर दिया उसीसे अपने खाने-पहननेका खर्च हाथ पसारकर लिया जाय।

—शेष प्रश्न

तुम लोगों (पति) के अलावा औरतोंको सचमुचका दुःख और कोई नहीं दे सकता।

—श्रीकान्त, पर्व ४

दुनिया घूमकर मैंने बहुतेरी चीज़ोंकी थाह पाई है, पर नहीं पाई यदि किसीकी तो इस नर-नारीके प्रेमके तत्वकी। बहन; 'असम्भव' शब्द शायद इन्हींके कोषमें नहीं लिखा।

—अधिकार

हिन्दू वधूः—"मुझे आपने क्या समझा है, मैं नहीं जानती, परन्तु मेरी सास, मेरी जिठानी, मेरे जेठ, हमारे ठाकुर जी और अतिथिशाला, हमारे आत्मीय-स्वजनसमाज—इन सबसे अलग करके अपने पतिको मैं एक दिनके लिए भी नहीं पाना चाहती।

—विप्रदास

पतिके विरुद्ध कभी विद्रोहका स्वर मनमें नहीं लाना चाहिए। लेकिन पति भी मनुष्य है, और मनुष्यको भगवान्‌के रूपमें पूजा करना केवल निष्फल ही नहीं, इससे वह (स्त्री) अपनेको भी और पतिको भी छोटा बना देती है।

—पत्रावली-लीलारानी गंगोपाध्यायको

ब्याहके मंत्र कर्त्तव्य-बुद्धि दे सकते हैं, भक्ति दे सकते हैं, सहमरण की प्रवृत्ति दे सकते हैं, किन्तु माधुर्य देनेकी शक्ति उनमें नहीं है।

—चरित्रहीन

• • • विधवा

"मैं हिन्दू विधवा हूँ। मुझे दीर्घजीवी होनेके लिए कहना मानो मुझे शाप देना है। हमलोगोंका कोई शुभाकांक्षी कभी इस तरहका आशीर्वाद नहीं देता।"

—रमा

मैं विधवा-विवाहकी अच्छाई-बुराईपर बहस नहीं कर रहा; परन्तु इस क्षेत्रमें तुम्हारा साराका सारा हिन्दू-समाज चिल्ला-चिल्लाकर मर जाय, तो भी मैं यह नहीं मानूँगा कि यही व्यवस्था उस [विधवा] दुध-मुँही बच्चीके लिए चरम और श्रेय है। सारे जीवनको क्या तुमलोगोंने खेलकी चीज़ समझ रखा है कि 'ब्रह्मचर्य-ब्रह्मचर्य' कहके चिल्लानेसे ही सारी दुनिया उसके लिए रात ही रातमें ऋषियोंका तपोवन हो जायगी।

—रहदाह

[सती-प्रथा बन्द हो गई तो क्या] हम यहीं बैठे-बैठे ही अपनी विधवाओंको देवी बना डालेंगे। इसके बाद शास्त्रोंमेंसे बहुतसे पुराने श्लोक ढूँढ़कर निकाले गये, जिनका इतने दिनों तक कभी कोई व्यवहार नहीं हुआ था, और जो न जाने कहाँ पड़े हुए थे, और उन्हीं श्लोकोंकी दुहाई देकर और सुनीतिकी पुकार मचाकर जितने प्रकारकी कठोरताओंकी कल्पना की जा सकती थी, वे सभी कठोरताएँ सब विधवाओंके सिरपर लादकर उन्हें नित्य थोड़ा-थोड़ा करके 'देवी' बनानेका काम शुरू कर दिया गया। वह आभूषण आदि न पहने, वह दिन-रातमें केवल एक बार खाये, वह हड्डियाँ तोड़डालनेवाला परिश्रम करे, थानमेंसे फाड़ी हुई बिना किनारीकी धोती पहने,—क्योंकि वह देवी जो ठहरी! पुरुष चिल्ला-

चिल्लाकर कहने लगे कि, हमारी विधवाओंकी तरहकी देवियाँ भला और किस समाजमें हैं? फिर भी उस देवीको विवाहवाले घरमें या उसके मण्डपके पास नहीं जाने दिया जाता था। क्योंकि डर था कि कहीं एक देवीका मुँह देखकर और कोई देवी न हो जाय।

—नारीका मूल्य

क्या कोई पुरुष यह बात माननेके लिए तैयार होगा कि वास्तवमें कुल-त्याग पति-युक्ता स्त्रियाँ ही करती हैं, और वह भी केवल पुरुषोंके अत्याचार और उत्पीड़नके कारण।

—नारीका मूल्य

विधवाके आमरण संयत जीवनको क्या हम विराट् पवित्रताका भी सम्मान न देंगे?

यह भी एक उसी शब्दका मोह है। 'संयम' शब्द बहुत दिनोंसे बहुत ज़्यादा इज़्ज़त पा-पाकर ऐसा फूल उठा है कि उसके लिए अब स्थान-काल, कारण-अकारण नहीं रह गया है। उसके उच्चारण मात्रसे सम्मानके बोझसे आदमीका सिर झुक जाता है।............यह भी एक थोथी आवाज़से ज़्यादा कुछ नहीं है। पति की स्मृतिको छातीसे चिपटाये रहकर विधवाओंको दिन काटने चाहिए, उसके समान स्वतःसिद्ध पवित्रताकी धारणाको स्वीकार करनेमें मुझे तबतक हिचकिचाहट रहेगी, जब तक उसे कोई प्रमाणित नहीं कर देगा।

—पत्रावली—लीलारानी गंगो० को

[विधवा] स्त्रियोंमें आत्मोत्सर्गकी प्रवृत्ति है तो, पर वह उसके भीतरकी पूर्णतासे नहीं आती, आती है सिर्फ़ शून्यतासे, और उठती है हृदय खाली करके। वह तो स्वभाव नहीं अभाव है, अभावके आत्मो-त्सर्गपर मैं कानी कौड़ीका भी विश्वास नहीं करती।

—शेष प्रश्न

संयम जहाँ अर्थहीन है वहाँ सिर्फ़ निष्फल आत्म-पीड़न है !

—शेष प्रश्न

मैंने स्वयं लड़कपनमें एक बार छः, सात सौ कुलत्यागिनी-बंगालिनों का इतिहास संग्रह किया था। बहुत समय, बहुत रुपये इसमें नष्ट हुए थे। लेकिन उससे मुझे एक विचित्र शिक्षा भी मिली थी। जो कुल-त्याग करके आती हैं उनमें अस्सी प्रतिशत प्रायः सधवाएँ हैं, विधवाएँ बहुत ही कम हैं !

—पत्रावली—लीलारानी गंगोपाध्यायको

अति संयम भी एक प्रकारका असंयम है।

—शेष प्रश्न

हिन्दू विधवाके सामने अगर कोई मर जाता है, और उसके उँगली से छूनेसे भी वह ज़िन्दा हो सकता है, तो हिन्दू विधवाको यह भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि वह विधवा है, और जो आदमी मर रहा है, पर-पुरुष है।

—पत्रावली—मणिलाल गंगो० को

विधवा होना ही नारी-जीवनकी चरम हानि और सधवा होना ही चरम सार्थकता है, इन दोनोंमें कोई भी सत्य नहीं।

—पत्रावली—लीलारानी गंगो० को

मैं विधवा हूँ, मेरी जानका भला क्या मूल्य है भाई ?

—चरित्रहीन

• • • प्रेम

बड़ा प्रेम केवल पास ही नहीं खींचता, दूर भी ठेल देता है।

—श्रीकान्त, पर्व १

इस, प्रेमसे बढ़कर शक्ति, इस प्रेमसे बढ़कर शिक्षक संसारमें शायद ही कोई हो। ऐसी कोई बड़ी बात नहीं जिसे यह न कर सके।

—श्रीकान्त, पर्व २

(पति-परित्यक्ता एक-निष्ठ प्रेमके प्रतिदानके सम्बन्धमें) उनका प्यार तो आपकी दृष्टिसे ओझल नहीं है। ऐसे मनुष्यके सारे जीवनको लँगड़ा बनाकर मैं 'सती'का 'खिताब' नहीं खरीदना चाहती।

—श्रीकान्त, पर्व २

न कुछ एक रात्रिके विवाह-अनुष्ठानको, जो कि पति-पत्नी दोनोंके ही निकट स्वप्नकी तरह मिथ्या हो गया है, ज़बर्दस्ती जीवनभर 'सत्य' कहकर खड़ा रखनेके लिए इतने बड़े प्रेमको क्या मैं बिलकुल ही व्यर्थ कर दूँ? जिन विधाताने प्रेमकी यह देन दी है, वे क्या इसीसे खुश होंगे?

—श्रीकान्त, पर्व २

मैंने बहुत देखकर जान लिया है कि स्नेहकी गहराई समयकी स्वल्पतासे हरगिज़ नहीं नापी जा सकती।

—श्रीकान्त, पर्व ३

संसारमें सिर्फ़ बाहरी घटनाओंको अगल-बगल लम्बी सजाकर उससे हृदयोंका पानी नहीं नापा जा सकता।

—श्रीकान्त, पर्व ३

(भतीजा अत्यन्त प्यार करनेवाली ताईसे) "ऊँह,—तू मुझे इना-

लातमें देगी ? दे न, देकर मज़ा देख न ! आपही रो-रोकर मर मिटेगी,— मेरा क्या होगा ?

—मुक़द्दमेका नतीजा

जिसका अपना मन दूसरेके हाथ चला जाता है, संसारमें उससे बढ़कर असहाय, निरुपाय शायद और कोई भी नहीं।

—षोडशी

प्रेम करना और बात है और रूपका मोह और बात। इन दोनोंमें बहुत अधिक गड़बड़ी होती है और पुरुष ही अधिक गड़बड़ी करते हैं। रूपका मोह तुमलोगों (पुरुषों) की अपेक्षा हमलोगों (स्त्रियों) में बहुत कम होता है; इसीलिए तुम लोगोंकी तरह हम उन्मत्त नहीं हो जातीं।

—देवदास

जो यथार्थ प्रेम करता है वह सहन किया करता है।

—देवदास

इससे बढ़कर आफ़तकी बात और कोई नहीं हो सकती कि आदमी जिसे प्यार न करता हो, वही ज़बरदस्ती प्यारकी कहानी सुनाने बैठ जाय।

—देवदास

प्रेम-पात्रका निशानतक पुँछ गया है (पति या पत्नीकी मृत्यु हो जानेपर) उन्हें किसी दिन प्रेम किया था, मनमें सिर्फ़ यह घटना मात्र रह गई है। मनुष्य नहीं है, उसकी केवल स्मृति है। उसीको अहोरात्रि मनमें पाळले रहकर वर्तमानकी अपेक्षा अतीतको ही ध्रुव जानकर जीवन बितानेमें कौन-सा बड़ा आदर्श है, मेरी तो समझमें नहीं आता।

—शेष प्रश्न

जो प्रेम करता है, उसके लिए घृणा करनेका आरोप लगानेके समान भारी दण्ड और कुछ नहीं है; यह बात प्रेम खुद ही बता देता है।

—गृहदाह

प्रेमकी तो कोई जाति नहीं, कोई धर्म नहीं,—विचार-विवेक और भलाई-बुराईका उसे कुछ ज्ञान नहीं। जो इस तरह मर सकता है, वह तो समाजके हाथके बनाये सब क़ायदे-क़ानूनोंसे बहुत ऊपर है, यह सब विधि-निषेध उसे स्पर्श भी नहीं कर सकते;—......।

—गृहदाह

शाहजहाँ बादशाह कवि थे; वे अपनी शक्ति, सम्पदा और धैर्यसे इतनी बड़ी विराट् सौन्दर्यकी वस्तु प्रतिष्ठित कर गये हैं। मुमताज़ तो आकस्मिक उपलक्ष्य मात्र थी। (और फिर उनकी, सुना है, और भी बहुत-सी बेगमें थीं)। धर्मके नामपर होता तो भी कोई नुक़सान नहीं था और हज़ारों-लाखों आदमियोंकी हत्या करके दिग्विजय-प्राप्तिकी स्मृतिके रूपमें होता तो भी इस तरह चल जाता। यह एकनिष्ठ प्रेमका दान नहीं है, यह तो बादशाहका निजी आनन्द-लोकका अक्षय दान है।

—शेष प्रश्न

एक दिन जिससे प्रेम किया है, फिर किसी दिन किसी भी कारणसे उसमें परिवर्त्तनका अवकाश नहीं हो सकता। मनका यह अचल-अडिग जड़-धर्म न तो स्वस्थ है और न सुन्दर ही।

—शेष प्रश्न

"जैसे नारीका प्रेम हृदयको आच्छन्न कर देता है, वैसे ही उसके रूप का मोह भी बुद्धिको बेहोश कर डालता है। किया करे, पर इनमेंसे एक जितना बड़ा सत्य है, दूसरा उतना ही बड़ा असत्य। कुहरा चाहे जितने बड़े समारोहके साथ सूर्यके प्रकाशको ढक दे, फिर भी वह असत्य है। ध्रुव सत्य तो सूर्य ही है।"

"नहीं ! यह तो कविकी उपमा है । कोई युक्ति नहीं और सत्य भी नहीं । मालूम नहीं, किस आदिम कालमें कुहरेकी सृष्टि हुई थी, पर आज भी वह उसी तरह मौजूद है । सूर्यको उसने बार-बार ढका है और बार-बार ढकता रहेगा । मालूम नहीं सूर्य ध्रुव है या नहीं, पर कुहरा भी असत्य प्रमाणित नहीं हुआ । दोनों ही नश्वर हैं, और हो सकता है कि दोनों ही नित्य हों । इसी तरह, भले ही (रूपका) मोह क्षणिक हो, पर क्षण भी तो असत्य नहीं । क्षणभरका सत्य लेकर ही बार-बार वह वापस आया करता है । मालती फूलकी आयु सूर्यमुखीकी तरह लम्बी नहीं, पर उसे असत्य कहकर कौन उड़ा सकता है ? आयुष्य कालकी लम्बाई ही क्या जीवनका इतना बड़ा सत्य है ?

—शेष प्रश्न

मनके मेलको मैं तुच्छ नहीं समझता, मगर उसीको अद्वितीय कहकर उच्च स्वरसे घोषित करना आजकल एक ऊँचे ढंगका फैशन हो गया है । इससे महत्ता और उदारता दोनों ही प्रकट होती हैं, परन्तु सत्य नहीं प्रकट होता । यह कहना ग़लत है कि संसारमें एक सिर्फ़ मन ही है और उसके बाहर जो कुछ है, सब छाया है ।

—शेष प्रश्न

श्रद्धा, भक्ति, स्नेह, विश्वास—इन्हें कड़ाई करके नहीं पाया जा सकता; बड़े दुःखसे और बहुत देरसे ये दिखाई देते हैं । मगर जब दिखाई देते हैं, तब रूप, यौवनका प्रश्न जाने कहाँ मुँह छिपाकर दुबक जाता है !

—शेष प्रश्न

प्रेमकी पवित्रताका इतिहास ही मनुष्यकी सभ्यताका इतिहास है, उसका जीवन है । यही उसके महान् होनेका धारावाहिक वर्णन है ।

—शेष प्रश्न

आयुकी दीर्घताको ही जो सत्य समझकर जकड़े रहना चाहते हैं, मैं उनमेंसे नहीं हूँ। जो लोग, इस डरसे कि असली फूल जल्दीसे सूख जाते हैं, देरतक रहनेवाले नक़ली फूलोंका गुच्छा बनाते और फूलदानीमें सजाकर रखते हैं, उनके साथ मेरे मतका मेल नहीं खाता। × × × किसी भी आनन्दमें स्थायित्व नहीं है। स्थायी हैं सिर्फ उस आनन्दके क्षणस्थायी दिन और वे दिन ही तो मानव-जीवनके चरम संचय हैं। उस आनन्दको बाँधने चले कि वह मरा। इसीसे ब्याहमें स्थायित्व तो है, पर उसका आनन्द नहीं, दुःसह स्थायित्वकी मोटी रस्सी गलेमें बाँधकर वह आनन्द आत्म-हत्या करके मर मिटता है।

—शेष प्रश्न

प्रेम क्या नहीं कर सकता? रूप, यौवन, सम्मान, सम्पदा—यह सब कुछ नहीं, क्षमा ही उसकी वास्तविक आत्मा है। जहाँ क्षमा नहीं वहाँ प्रेम सिर्फ़ विडम्बना है, वहाँपर रूप-यौवनका विचार-वितर्क उठता है और वहींपर आता है आत्मसम्मान ज्ञानका टग ऑफ़् वार (रस्सा-कशी)!

—शेष प्रश्न

प्रेमकी वास्तविकताको लेकर मर्दोंका दल जब अपनी बड़ाई किया करता है, तब सोचती हूँ कि हमारी जाति उनसे अलग है। तुम लोगोंके और हम लोगोंके प्यारकी प्रकृति ही भिन्न है। तुम लोग चाहते हो विस्तार और हम लोग चाहती हैं गम्भीरता, तुम लोग चाहते हो उल्लास और हम चाहती हैं शान्ति। × × × ओ जी—प्रेमकी बड़ीसे बड़ी प्राप्ति, स्त्रियोंके लिए, निर्भयताकी अपेक्षा और कुछ नहीं है। पर यही चीज़ तुम लोगों (पुरुषों) से कोई कभी नहीं पाती।

—श्रीकान्त, पर्व ४

समाजमें जिसे गौरव प्रदान नहीं किया जा सकता, उसे केवल प्रेमके द्वारा मूर्त्त नहीं किया जा सकता। मर्यादाहीन प्रेमका भार शिथिल होते ही दुस्सह हो जाता है।

—पत्रावली-हरिदास शास्त्री को

यथार्थ प्यार करनेमें स्त्रियोंकी शक्ति और साहस पुरुषसे कहीं अधिक है। वे कुछ नहीं मानतीं। पुरुष जहाँ भय-विह्वल हो जाते हैं, स्त्रियाँ वहाँ स्पष्ट बातें उच्च स्वरसे घोषित करनेमें दुविधा नहीं करतीं।

—पत्रावली-हरिदास शास्त्री को

कहा जाता है कि सच्चे प्यारके लिए संसारमें दुःख भोगना पड़ता है। कोई न करे तो समाजके सेतुके अन्यायका प्रतिकार कैसे होगा? समाजके विरुद्ध जाना और धर्मके विरुद्ध जाना, एक वस्तु नहीं है। इस बातको लोग भूल जाते हैं।

—पत्रावली—हरिदास शास्त्री को

जिसे परेशान करनेके लिए कोई नहीं है, उससे बढ़कर अभागी लड़की संसारमें दूसरी नहीं है।

—आगामी काल

जिसे हम प्यार करते हैं, वह अगर हमें प्यार न करे, यहाँ तक कि घृणा भी अगर करे; तो हम उसे शायद सह सकते हैं; किन्तु जिसके बारेमें यह विश्वास करते हैं कि उसका प्यार हम प्राप्त कर चुके हैं, उसीके विषयमें यदि अपनी भूल हमें मालूम हो जाय तो वह बड़े कष्टकी स्थिति होती है। पहली अवस्थामें तो व्यथा ही होती है परन्तु दूसरीमें अपना अपमान भी जान पड़ता है।

—चरित्रहीन

प्रणयकी अन्तर्दृष्टिको सहजमें धोखा नहीं दिया जा सकता।

—चरित्रहीन

क्या यह सच है कि प्रेम अन्धा है ?

यदि हाँ तो देखो, अंधा आदमी गढ़ेमें गिर जाता है तो लोग दौड़कर उसे निकाल लेते हैं—उसके लिए दुःख करते हैं। लेकिन प्रेमसे अन्धा होकर वही आदमी जब नीचे गिर जाता है, तब कोई हाथ पकड़कर उसे उठानेको नहीं दौड़ आता—यह क्यों? जिस सत्यका मनुष्य आप ही प्रचार करता है, प्रयोजनके समय वह उस सत्यकी कोई मर्यादा ही नहीं रखता।

—चरित्रहीन

आजकलका यही सामाजिक आदमी एक दिन ऐसा था कि अपनी प्रवृत्तिके सिवा और किसीके भी शासनको नहीं मानता था। रूपके आकर्षणसे, उस समय, उसकी वह दुर्दान्त प्रवृत्तिकी ताड़ना ही था उसका प्रेम। इसी प्रवृत्तिको शौक़ीन पोशाक पहनाकर, सजाकर खड़ा करनेसे ही उपन्यासका खालिस प्रेम तैयार होता है।

—चरित्रहीन

"मैं किसी तरह यह नहीं मान सकता कि पवित्र प्रेम स्वर्गीय नहीं है।"

"तुम्हारे मानने न माननेपर तो इसका दारोमदार है नहीं। हम लोगोंकी यह देह भी तो एक दिन नष्ट होनेवाली क्षणभंगुर है—एक दम पार्थिव चीज़ है। किन्तु इससे तो मैं कोई दुःखका कारण नहीं देखती। बच्चा धरतीपर आनेके बादसे जब तक अपनी इस जड़ देहमें सृष्टि करनेकी शक्तिका संचय नहीं कर पाता तब तक प्रेमका सिंहद्वार उसके सामने बंद ही रहता है। वह उस सिंहद्वारको प्रवृत्तिकी ताड़नासे ही लाँघता है। इस अवस्थाके पहले वह अपने माता-पिताको, भाई-बहनको प्यार करता है, बन्धु-बान्धवों व इष्ट-मित्रोंको भी प्यार करता है, किन्तु जब तक उसका पंचभौतिक शरीर खड़ा नहीं हो जाता, तब तक तुम्हारे

स्वर्गीय प्रेमकी कोई खबर रखनेका अधिकार उसे नहीं होता। पृथ्वीमें आकर्षण शक्ति अवश्य है किन्तु पका हुआ फल ही उसके आगे आत्म-समर्पण करता है, कच्चा फल नहीं। सारे विश्वमें अविच्छिन्न सृष्टिका खेल, रूपका खेल चल रहा है। यह स्वर्गीय नहीं है, इसलिए इतना दुःख करने या लज्जित होनेकी बात तो मैं नहीं देखती।

—चरित्रहीन

असावधानीके कारण वृक्षके ऊपरसे गिरकर हाथ-पैर तोड़ लेनेका अपराध पृथ्वीकी माध्याकर्षण शक्तिके ऊपर मढ़ना और प्रेमको कुत्सित घृणित कहना एक ही बात है। इसी तरह संसारमें एकका अपराध दूसरेके सिर थोपा जाता है।

—चरित्रहीन

जीवका प्रत्येक अणु-परमाणु, प्रत्येक रक्तकण, अपनेको और भी उत्कृष्ट रूपमें बदलनेका, विकसित करनेका लोभ किसी तरह दबा नहीं सकता। जिस देहमें उसका जन्म है, उस देहमें जब उसकी परिणतिकी निर्दिष्ट सीमा समाप्त हो जाती है, तब वहीं उसका यौवन है। केवल तभी वह अन्य देहके संयोगसे अधिकतर सार्थक होनेके लिए अपनी प्रत्येक शिरा-उपशिरामें—नस-नसमें—जिस तांडवकी सृष्टि करता है, उसीको पंडितोंके नीतिशास्त्रमें पाशविक कहकर ग्लानि प्रकट की जाती है। इसका तात्पर्य न समझ पाकर ही हतबुद्धि विज्ञ पंडितोंका दल इसे घृणित कहकर, वीभत्स कहकर, सन्तुष्ट होता है। लेकिन इतना बड़ा आकर्षण किसी तरह ऐसा हेय, ऐसी छोटी चीज़ नहीं हो सकता। यह सत्य है, सूर्यके प्रकाशकी तरह सत्य है, ब्रह्माण्डके आकर्षणकी तरह सत्य है। कोई भी प्रेम कभी घृणाकी चीज़ नहीं हो सकता।

—चरित्रहीन

जिसे हमने प्यार किया है, अपने किसी श्रेष्ठ स्थानमें उसकी स्थापना करेंगे—इस बातको लेकर किसीके साथ झगड़ा खड़ा नहीं होता। किन्तु जो समाजविरुद्ध है उसके लिए सुईकी नोक-भर जगह भी छोड़ देनेके लिए वह किस प्रलोभनसे राजी करेगा।

—चरित्रहीन

एक आदमी दूसरेके मनकी बात जान सकता है तो केवल सहानुभूति और प्यारसे—उम्र और बुद्धिसे नहीं।

—श्रीकान्त, पर्व १

विश्वास रखो कि सभीके शरीरमें भगवान् निवास करते हैं और जब तक मृत्यु नहीं हो जाती, तब तक वे उसे छोड़कर नहीं जाते।

—अन्धकारमें आलोक

यह ठीक है कि सभी मन्दिरोंमें देवताकी पूजा नहीं होती, लेकिन फिर भी उनमें रहनेवाले देवता ही होते हैं। उन्हें देखकर सिर न नवा सको, किन्तु ठुकराकर भी नहीं जा सकते।

—अन्धकारमें आलोक

स्वभावके विरुद्ध विद्रोह किया जा सकता है, पर उसे बिल्कुल उड़ाया नहीं जा सकता। नारी-शरीरपर सैकड़ों अत्याचार किये जा सकते हैं पर नारीत्वको तो अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

—अन्धकारमें आलोक

मुझे परीक्षा करके देखना होगा कि सचमुच क्या मनुष्य ही मनुष्यों में बड़ा है या उसके जन्मका हिसाब ही संसारमें बड़ा है।

—श्रीकान्त, पर्व २

मनुष्यमें जो पशु है, सिर्फ उसीके अन्यायसे और उसीकी समस्त भूल-भ्रान्तिसे मनुष्यका विचार करूँ? और जिस देवताने समस्त दुःख, सम्पूर्ण व्यथा और समस्त अपमानोंको चुपचाप सहन और वहन करके भी आज सस्मित मुखसे आत्मप्रकाश किया है, उसे बिठानेके लिए कहीं आसन भी न बिछाऊँ! यह क्या मनुष्यके प्रति सच्चा न्याय होगा?

—श्रीकान्त, पर्व २

वास्तवमें मनुष्य होकर पैदा होनेके सम्मान-ज्ञानको ही आदमी होना कहते हैं—मृत्युके भयसे मुक्त होनेको ही आदमी होना कहते हैं।

—अधिकार

इससे भी न जाने कितने बड़े दुःख और कष्ट भगवान् मनुष्यको सहने देकर उसे सच्चा मनुष्य बना देते हैं।

—चरित्रहीन

मैंने समझ लिया है कि मनुष्य अन्त तक किसी तरह भी अपना पूरा-पूरा परिचय नहीं पाता। वह जो नहीं है, वही अपनेको समझ बैठता है और बाहर प्रचार करके केवल बिडम्बनाकी सृष्टि करता है, और जो दण्ड इसका भोगना पड़ता है, वह भी बिल्कुल हल्का नहीं होता।

—श्रीकान्त, पर्व १

• • • नूतन और पुरातन

"तब कोई चीज़ पैदा होती थी तो पास-पड़ोसी सभीको उसमें से कुछ-न-कुछ मिला करता था, और अब तो अकेला 'थोड़' और 'मोचा' तक—आँगन में लगे हुए शाककी दो पत्तियाँ भी, कोई किसीको नहीं देना चाहता। कहते हैं रहने दो, साढ़े आठ बजेकी गाड़ीसे ख़रीद-दारोंके हाथ बेच देनेसे दो पैसे तो भी आ जायेंगे। कहाँ तक दुःखड़ा रोया जाय, पैसे बनानेके नशेमें स्त्री और पुरुष सबके सब बिल्कुल ही नीच हो गये हैं।"

—श्रीकान्त, पर्व ३

वे (आधुनिक) तो सिर्फ़ सोलह आनेके बदले चौंसठ पैसे गिन लेना जानते हैं,—सिर्फ़ देन-लेन की बात समझते हैं, और उन्होंने सीख रखा है सिर्फ़ भोगको ही मानव जीवनका एक मात्र धर्म मानना। इसीसे तो उनके दुनिया भरके संग्रह और संचयके व्यसनने संसारके समस्त-कल्याण को ढक रखा है।

—श्रीकान्त, पर्व ३

इस क्षणिक परिवर्तनशील संसारमें सत्योपलब्धि नामकी कोई नित्य वस्तु है ही नहीं। उसके जन्म है, मरण है,—युग-युगमें मनुष्यकी आवश्यकताके अनुसार सत्यको नया रूप धारण करके आना पड़ता है। यह विश्वास भ्रान्त है—यह धारणा कुसंस्कार है कि अतीतमें जो सत्य था उसको वर्तमानमें भी सत्य स्वीकार करना ही पड़ेगा।

—अधिकार

आधुनिक समाज—यह हम लोगोंके बड़े सर्किलका पारिवारिक बन्धन है। उसका 'कोड' ही अलग है, और चेहरा ही जुदा है। उसकी जड़ रस नहीं खींचती, पत्तों का रंग हरा नहीं होने पाता कि पिलाई आने लगती है।

—अनुराधा

उम्रके साथ-साथ एक दिन सभी चीज़ें प्राचीन, जीर्ण और नाकाम हो जायँगी; और तब वे त्याज्य ही ठहरेंगी। प्रतिदिन मनुष्य तो बढ़ता जाय पर उसके पूर्वपुरुषोंकी प्रतिष्ठित हजारों वर्षोंकी रीति-नीतियाँ जैसी-की-तैसी एक ही जगह अचल होकर पड़ी रहें—ऐसा हो तो अच्छा ही हो, मगर ऐसा होता नहीं। मुश्किल तो यह है कि सिर्फ़ वर्षोंकी संख्यासे ही किसी संस्कारकी प्राचीनता निरूपित नहीं की जा सकती।

—अधिकार

पुरानेके मानी ही पवित्र नहीं हो जाता, आदमी सत्तर वर्षका पुराना हो जाय तो वह दस सालके बच्चेकी अपेक्षा पवित्र नहीं हो जाता।

—अधिकार

वस्तु अतीत होती है कालके धर्मसे, मगर अच्छी होती है अपने गुणसे। सिर्फ़ प्राचीन होनेसे ही वह पूज्य नहीं हो जाती। जो बर्बर जाति किसी ज़मानेमें अपने बूढ़े माँ-बापको ज़िन्दा गाड़ देती थी, वह आज भी अगर उस प्राचीन अनुष्ठानकी दुहाई देकर मनुष्यके कर्त्तव्यका निर्देश करना चाहे तो?

—शेष प्रश्न

बुरा तो अच्छेका दुश्मन नहीं हुआ करता, अच्छे का दुश्मन तो वह है जो उससे और भी अच्छा है। वह 'और भी अच्छा' जिस दिन अच्छेके सामने उपस्थित होकर प्रश्न का जवाब चाहता है उस दिन उसीके हाथमें राजदण्ड सौंपकर उसे अलग हो जाना पड़ता है।

—शेष प्रश्न

जगत्‌के आदिम युगमें एक दिन विराट् अस्थि, विराट् देह और विराट् क्षुधा वाले एक विराट् जीवकी सृष्टि हुई थी, उसी देह और क्षुधासे वह संसारकी जय करता फिरा था, और उस दिन वे थे उसके सत्य उपादान। किन्तु, फिर एक दिन ऐसा आया कि उसी देह और उसी क्षुधाने उसकी मृत्यु ला दी। एक दिनके सत्य उपादानोंने दूसरे दिनके मिथ्या उपादान बनकर उसे संसारसे निश्चिह्न कर दिया।

—शेष प्रश्न

पश्चिमके ज्ञान-विज्ञान और सभ्यताके सामने भारतवर्षको आज अगर नीचा देखना पड़े तो उसके दम्भको चोट ज़रूर पहुँचेगी, किन्तु यह मैं निश्चयसे कह सकता हूँ कि उससे उसके कल्याणको चोट नहीं पहुँचेगी।

—शेष प्रश्न

(उन्होंने) सोचा था कि दुनियाकी उमरसे दो हजार वर्ष पोंछ डालनेसे ही परम लाभ अपने-आप आ पहुँचेगा। योरोपमें एक दिन ऐसे ही झूठे लाभ की स्कीम बाँधी थी प्यूरिटनोंके एक दलने। सोचा था कि भागकर अमेरिका चले जायँगे और पिछली सत्रह शताब्दियाँ मिटाकर बिना किसी झंझटके आनन्दके साथ बाइबिलका सतयुग क़ायम कर लेंगे। किन्तु उनके लाभका हिसाब आज सबको मालूम हो गया है। पिछले ज़मानेके दर्शनशास्त्रसे जब वर्त्तमान विधि-विधानोंका समर्थन किया जाने लगता है, तभी उन विधि-विधानोंके वास्तवमें टूटनेका दिन आ जाता है।

—शेष प्रश्न

दौड़कर चलना ही प्रगति नहीं है।

—जागरण

सभ्यता क्या है ? यह तो पूरी राक्षसी है ! जो सभ्यता ग़रीबोंके मुँहका कौर—जन-साधारणका जीवन, मुट्ठीमें करके उन्हें मरनेको लाचार बना दे वह राक्षसी नहीं तो और क्या कहलायेगी ।

—जागरण

उपलक्ष्य वस्तु असल वस्तुसे भी किसी तरह कई गुनी अधिक होकर उसे पार कर जाती, यह बात, यदि इन जैसे-लोगों (आधुनिक फैशनेबुल) के सम्पर्कमें न आया जाय तो, इस तरह प्रत्यक्ष नहीं हो सकती।

—श्रीकान्त, पर्व १

उनके यहाँ (आधुनिक अति सभ्य समाज) सिर्फ़ गाड़ी-घोड़े, साड़ी और झूठे प्यारके क़िस्से हैं । मैं नहीं जानती कि कहाँ नैनीताल है और कहाँ मंसूरीका होटल, लेकिन उनकी बातोंमें वहाँ के बारेमें कैसे-कैसे गन्दे इशारे रहते हैं—सुनते-सुनते तबीयत होती है कि कहीं भाग जाया जाय ।

—विप्रदास

उन लोगों (आधुनिक अति सभ्य समाज) के न तो शान्ति है और न धर्म-कर्म की कोई बला । कुछ भी विश्वास नहीं करते, सिर्फ़ बहस करते हैं । अखबार पढ़ा करते हैं, इससे जानते बहुत हैं । × × × मगर उन लोगोंको थकावट नहीं आती, बकते-झकते सबके सब मानो उन्मत्त हो उठते हैं ।

—विप्रदास

बस बस गन्दगी दबी रहनेसे ही हमारा (आधुनिक समाजका) काम चल जाता है—उससे अधिक हम नहीं चाहते। वह चीज़ हमारी आँखोंसे छिपी रहे, बस हम लोग ख़ुश रहेंगे ।

—नया विधान

• • • नगर और ग्राम

हम लोग (ग्रामीण) अशिक्षित और दरिद्र हैं। हम लोग अपने मुँहसे अपना अभिमान प्रकट नहीं कर सकते। तुम लोग हमें छोटा आदमी कहकर पुकारते हो और हम चुपचाप स्वीकार भी कर लेते हैं। पर हमारा अन्तर्यामी स्वीकार नहीं करता। वह तुम लोगों (नगर-वासियों) की अच्छी बातोंसे भी टससे मस नहीं होता।

—पण्डितजी

"तुम लोगों (नगरवासियों) को अपना आत्मीय और शुभा-कांक्षी समझनेमें हमें डर लगता है। तुम देखते नहीं, हम लोगोंमें ऊँट वैद्य और पोंगा पंडित ही पूजा-प्रतिष्ठा पाते हैं, पर तुम्हारे जैसे बड़े-बड़े प्रोफ़ेसरों और डाक्टरोंकी भी यहाँ कुछ नहीं चलती। हम लोगोंके हृदय में भी देवता निवास करते हैं, तुम लोगोंकी यह अश्रद्धाकी करुणा, यह ऊपर बैठकर नीचे भिक्षा देना, उन देवताओंको चोट पहुँचाता है, वे मुँह फेर लेते हैं।"

—पण्डितजी

तुम लोगों (नागरिकों) के सम्पर्कमें रहकर लिखना-पढ़ना सीखनेसे किसानका लड़का जब बाबू बन जाता है, तब वह अपने अशिक्षित बाप-दादाको नहीं मानता, श्रद्धा नहीं करता।

—पण्डितजी

केवल इच्छा और हृदय होनेसे ही दूसरोंका भला अथवा देशका कार्य नहीं किया जा सकता। तुम जिसका भला करना चाहते हो, उसके साथ रहने का कष्ट भी तुम्हें सहन करना पड़ेगा।

—पण्डितजी

ग्रामीणः—ये पढ़े-लिखे और निरक्षर होनेपर भी अशिक्षित नहीं हैं। बहुत युगोंकी प्राचीन सभ्यता आज भी इनके समाजकी नसोंमें मिली हुई है। नीतिकी मोटी-मोटी बातें ये लोग जानते हैं। किसी धर्मके विरुद्ध इनका द्वेष-भाव नहीं है; कारण संसारके सभी धर्म मूलतः एक ही हैं और तैंतीस करोड़ देवताओंको अमान्य न करके भी एकमात्र ईश्वरको माना जा सकता है, इस बातका इन्हें ज्ञान है और अन्य किसी से भी कम नहीं है। हिन्दुओंका भगवान् और मुसलमानोंका खुदा एक ही वस्तु है, यह सत्य भी इनसे छिपा नहीं।

—गृहदाह

ग्रामीणः—ये लोग न तो अस्तरोगी निष्कर्मा जमींदार हैं, और न बहुत भारसे दबे हुए, कन्याके दहेजकी फ़िक्रमें ग्रस्त बंगाली गृहस्थ। इस लिए सोना जानते हैं। दिनभर घोर परिश्रम करनेके उपरान्त रातको ज्यों ही उन्होंने चारपाई ग्रहण की कि फिर; घरमें आग लगाये बग़ैर, सिर्फ़ चिल्लाकर या दरवाज़ा खटखटाकर उन्हें जगा दूँगा,—ऐसी प्रतिज्ञा यदि स्वयं सत्यवादी अर्जुन भी, जयद्रथ-वधकी प्रतिज्ञाके बदले कर बैठते तो, यह बात क़सम खाकर कही जा सकती है, कि उन्हें भी मिथ्या प्रतिज्ञाके पापसे दग्ध होकर मर जाना पड़ता।

—श्रीकान्त, पर्व १

"असलमें दुःख भोगता कौन है भइया? मन ही तो? मगर यह बला क्या हम लोगोंने बाक़ी छोड़ी है इनमें (दरिद्र ग्रामीण)?—बहुत दिनोंसे लगातार सिकंजेमें दबा-दबाकर बिलकुल निचोड़ लिया है बेचारों का मन। इससे ज्यादा चाहनेको अब ये खुद ही अनुचित स्पर्द्धा सम-झते हैं। वाह रे वाह! हमारे बाप-दादोंने भी सोच-विचार कर कैसी उमदा मशीन (कर्मवाद) ईजाद की है, क्या कहने?

—श्रीकान्त, पर्व १

नगर—मुँह सूख जानेपर कोई देखता नहीं; मुँह भारी होनेपर भी कोई लक्ष्य नहीं करता। यहाँ आप ही अपने-आपको देखना पड़ता है। यहाँ भिक्षा भी मिल जाती है, करुणाके लिए भी स्थान है, और आश्रय भी मिल जाता है। लेकिन अपना प्रयत्न चाहिए। यहाँ स्वयं अपनी इच्छासे कोई तुम्हारे बीचमें न आ पड़ेगा।

—बड़ी बहन

ऐसा विवेक कोई माने नहीं रखता। झूठे विवेककी जंजीर पैरोंमें डालकर अपनेको पंगु बना डालनेका हिमायती मैं नहीं हूँ। हमेशा दुःख भोगते चलना ही तो जीवन-धारणका उद्देश्य नहीं है।

—शेष प्रश्न

बिना किसी अपराधके मैं ही भला दुःख क्यों सहता रहूँ? ऐसा विश्वास मेरा नहीं है कि एकका दुःख और किसीके सरपर लाद देनेसे न्याय होता है।

—शेष प्रश्न

बहुत दिनोंके बद्धमूल संस्कारपर आघात लगनेसे आदमी सहसा सह नहीं सकता। आपने सच ही कहा है, हमारे निकट यह बात (तलाक या विवाह-विच्छेद) बहुत ही स्वाभाविक है; क्योंकि हमारे शरीर और मनमें यौवन परिपूर्ण है, हमारे मनमें प्राण है। जिस दिन जानूँगी कि आवश्यकता होनेपर भी उसमें परिवर्तनकी कोई शक्ति बाकी नहीं रही उस दिन समझ लूँगी कि उसका खातमा हो चुका है,—वह मर चुका है।

—शेष प्रश्न

अनुकरण चीज़ अगर सिर्फ़ बाहरकी नकल हो तो वह धोखा है, अनुकरण है ही नहीं; क्योंकि तब वह आकृतिसे मेल खाते हुए भी प्रकृतिसे नहीं मिलती। मगर भीतर-बाहरसे वह अगर एक-सी हो तो 'अनुकरण' होनेके कारण लज्जित होनेकी उसमें कोई बात नहीं।

—शेष प्रश्न

कोई कोई आदमी होते हैं जो बूढ़ा मन लिये ही पैदा होते हैं। उस बूढ़ेके शासनके नीचे उनका जीर्ण-शीर्ण विकृत यौवन हमेशा लज्जासे सिर नीचा किये रहता है। बूढ़ा मन खुश होकर कहता है, अहा! यह तो अच्छा है, कोई हंगामा नहीं, कोई उन्माद नहीं,—यही तो शान्ति है, यह तो मनुष्यके लिए चरम तत्त्वकी बात है। ऊँचे स्वरसे उसकी ख्याति का बाजा बजता है, पर इस बातको वह जान नहीं पाता कि यह उसके जीवनका जय-वाद्य नहीं, आनन्द-लोकके विसर्जनका बाजा है।

—शेष प्रश्न

मनका बुढ़ापा मैं उसीको कहती हूँ, जो अपने सामनेकी ओर नहीं देख सकता; जिसका हारा-थका जराग्रस्त मन भविष्यकी समस्त आशाओं को जलांजलि देकर सिर्फ़ अतीतके अन्दर ही ज़िन्दा रहना चाहता है। वर्तमान उसकी दृष्टिमें लुप्त है, अनावश्यक है, और भविष्य अर्थहीन। अतीत ही उसके लिए सब कुछ है। उसीको भुना-भुनाकर गुज़र करके जीवनके बाक़ी दिन बिता देना चाहता है।

—शेष प्रश्न

मैं मानना चाहती हूँ कि जब जितना पाऊँ उसीको सच्चा समझकर मान सकूँ। दुःखका दाह मेरे बीते हुए सुखकी ओस-बूँदोंको सुखा न डाले। एक दिनका आनन्द दूसरे दिनके निरानन्दके आगे शरमाये नहीं।

—शेष प्रश्न

इस जीवनमें सुख-दुःख कोई भी सत्य नहीं, सत्य हैं सिर्फ़ उनके चंचल क्षण, सत्य है सिर्फ़ उनके चले जानेका छन्द-मात्र।

—शेष प्रश्न

"इस जीवनमें कभी किसी भी कारण झूठी चिन्ता, झूठा अभिमान, झूठी बातका सहारा मुझे न लेना पड़े।"

—शेष प्रश्न

भारतके वैशिष्ट्य और योरोपके वैशिष्ट्यमें बड़ा भारी भेद है, परन्तु किसी देशके किसी वैशिष्ट्यके लिए मनुष्य नहीं हैं, बल्कि मनुष्यके लिए ही उस वैशिष्ट्यका आदर है। असल बात विचारनेकी यह है कि वर्तमान समयमें वह वैशिष्ट्य उसके लिए कल्याणकर है या नहीं। इसके सिवा और सब बातें अन्ध-मोह हैं।

—शेष प्रश्न

सिर्फ़ इसीलिए कि किसी एक जातिकी कोई विशेषता बहुत दिनोंसे चली आ रही है, क्या उस देशके मनुष्योंका अपने कल्याण-अकल्याणका ख्याल किये बग़ैर उसी साँचेमें हमेशा ढलते रहना होगा? इसके क्या मानी? मनुष्यसे बढ़कर मनुष्यकी विशेषता नहीं हो सकती, और इस बातको जब हम भूल जाते हैं तब विशेषता भी जाती रहती है और मनुष्यको भी हम खो बैठते हैं। यहीं पर तो वास्तविक लज्जा है।

—शेष प्रश्न

तब (अपनी भारतीय विशिष्टता खो देनेपर) मुनि-ऋषियोंके वंशधरोंके रूपमें हम भले ही न पहचाने जाँय, पर मनुष्यके रूपमें तो हमें पहचाना ही जायगा और जिसे आप ईश्वर कहा करते हैं, वह भी पहचान लेगा, उससे भी ग़लती न होगी।

—शेष प्रश्न

अन्य सभी संयमोंकी तरह यौन-संयम भी सत्य है, मगर वह गौण सत्य है। धूम-धाम या समारोहके साथ उसे जीवनका मुख्य सत्य बना देनेसे वह भी एक तरहका असंयम हो जाता है। उसका दण्ड भी है। आत्म-निग्रहके उग्र दम्भसे आध्यात्मिकता क्षीण होने लगती है।

—शेष प्रश्न

तमाम बड़ी चीज़ें आदमीके हाहाकारमेंसे ही पैदा होती हैं।

—शेष प्रश्न

आश्रमों परः—बच्चोंसे इतने आडम्बरके साथ इस तरहकी निष्फल दरिद्रताका आचरण करानेका नाम क्या आदर्श बनाना है ? इन्हें (बच्चों, स्नातकोंको) आदर्श बनाना हो तो साधारण और स्वाभाविक मार्गसे बनाइये । झूठे दुःखका बोझ लादकर असमयमें ही इन्हें बौना या कुबड़ा न बना डालिये ।

—शेष प्रश्न

आश्रम और गुरुकुल—संसार-त्याग और वैराग्य-साधन हमारा लक्ष्य नहीं । हमारी साधना है संसारका सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण सौन्दर्य, सम्पूर्ण जीवन लेकर जीवित रहना । मगर उसकी शिक्षा क्या यही है । बदनपर कपड़े नहीं, पाँवोंमें जूते नहीं, फटे-पुराने कपड़े पहन रखे हैं, रूखे बाल हैं, एक छाक अधपेट खाकर जो लड़के अस्वीकारके बीच बढ़ रहे हैं, प्राप्तिके आनन्दका जिनके भीतर चिह्न तक नहीं रहा है, देशकी लक्ष्मी क्या उन्हींके हाथ अपने भाण्डारकी चाबी सौंप देगी ? संसारकी तरफ़ एकबार मुँह उठाकर देखिये तो सही । जिन्हें बहुत मिला है, उन्होंने ही आसानीसे दिया है । उन लोगोंको ऐसी अकिंचनताका स्कूल खोलकर त्यागका ग्रेज़ुएट नहीं बनाया गया था ।

—शेष प्रश्न

बहुत ज़्यादा मज़बूत बनानेके लोभसे बिलकुल ठोस और निश्छिद्र मकान बनानेकी कोशिश मत करो । उससे मुर्देकी क़ब्र भले ही बन जाय, पर मनुष्यका शयनागार नहीं बन सकता ।

—शेष प्रश्न

सिर्फ़ भोगको जीवनकी सबसे बड़ी चीज़ समझकर संसारमें कोई भी जाति बड़ी नहीं हो सकती । मुसलमानोंने जिस दिन ऐसी ग़लती की, उस दिन उनका त्याग भी गया और भोग भी छूट गया ।

—शेष प्रश्न

कमसे कम ज़िन्दा तो यही आशा लेकर रहना पड़ेगा। असमयमें बादलोंकी ओटमें आज अगर सूर्य अस्त हो गया-सा मालूम दे, तो क्या वह अन्धकार ही सत्य हो जायगा और कल प्रभातमें अरुण प्रकाशसे अगर आकाश छा जाय तो क्या अपनी आँखोंको बन्द करके यह कह दूँगी कि यह प्रकाश नहीं है, अन्धकार है। जीवनको क्या ऐसे ही बच्चोंके खेलमें ख़तम कर दूँ?

—शेष प्रश्न

इस जीवनको ही जिन लोगोंने मानव-आत्माकी परम प्राप्ति समझा है, उनके लिए प्रतीक्षा करना मुश्किल है, वे तो आजन्म भोगकी अंतिम बूँद तक इसी जीवनमें पी लेना चाहेंगे; परन्तु हम जन्म-जन्मान्तर मानते हैं, प्रतीक्षा करनेका समय हमारे लिए अनन्त है,—उसमें औंधे लेटकर पीनेकी ज़रूरत नहीं पड़ती।

—शेष प्रश्न

इसी तरह लोग आनन्दसे और सौभाग्यसे स्वेच्छापूर्वक वंचित रहा करते हैं। आप लोग इस लोकको तुच्छ समझते हैं, इसीसे इहलोकने भी आप लोगोंको सारे जगत्‌के सामने तुच्छ बना रखा है।

—शेष प्रश्न

केवल अपने जीवनकी सार्थकताके भीतरसे ही संसारमें दूसरेके जीवनमें सार्थकता पहुँचाई जा सकती है; और व्यर्थतासे सिर्फ़ अकेला ही जीवन व्यर्थ नहीं होता,—वह अपने साथ और भी अनेक जीवनोंको जुदी-जुदी दिशाओंसे व्यर्थ करके व्यर्थ हो जाता है।

—श्रीकान्त, पर्व २

किसी तरह केवल प्राण धारण करके जीते रहना ही मनुष्यका जीवित रहना नहीं कहला सकता।

—नारीका मूल्य

इस लोकमें या परलोकमें, अपना या अन्य चार आदमियोंका, स्वदेश या विदेशका किस तरह सुख बढ़ाया जाय यही जीवनका कर्म है और चाहे जानकर हो चाहे बिना जाने, इसी चेष्टासे जीवका सारा जीवन परिपूर्ण रहता है। यही एक मात्र तराजू है जिसपर रखकर सब भले-बुरेको तौला जा सकता है।

—चरित्रहीन

"न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥"

आगमें घी देनेसे जैसे वह और भी ज़ोरसे जलने लगती है, वैसे ही भोग-उपभोगोंके द्वारा कामना बढ़ती ही जाती है, कभी घटती नहीं—ऐसा शास्त्रका वचन है।

"शास्त्रमें ऐसी बात है? सो तो होगी ही। उन्हें (शास्त्रकारोंको) यह भी तो मालूम था कि ज्ञानकी चर्चा करनेसे ज्ञानकी इच्छा बढ़ती है, धर्मकी साधना करनेसे धर्मकी प्यास भी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है, पुण्यके अनुशीलनसे पुण्यका लोभ भी क्रमशः उग्र होता जाता है,—मालूम होता है मानो अभी बहुत बाक़ी है। इसकी भी ठीक वही हालत है। यह कामना भी शान्त नहीं होती। इसलिए इस क्षेत्रमें भी वे लोग क्यों यही आक्षेप नहीं कर गये?

"मालूम नहीं, ऐसे बाहुल्यका इंगित वे क्यों कर गये? यह क्या बाज़ारमें बैठकर 'यात्रा' के गान सुनना है या पड़ोसीके घरका ग्रामोफोन है जो बीच ही में मालूम हो जायगा कि जाने दो, काफ़ी तृप्ति हो चुकी, अब उसकी ज़रूरत नहीं। इस तृप्ति-अतृप्तिकी असल सत्ता तो बाहरके भोगमें है नहीं, उसका स्रोत तो है जीवनके मूलमें। वहींसे वह हमेशा, जीवनकी आशा, आनन्द और रस जुटाया करती है और

शास्त्रका विचार व्यर्थ होकर दरवाजेपर पड़ा रह जाता है,—उसे छू तक नहीं पाता।"

"सो हो सकता है, मगर है तो आखिरकार वह शत्रु ही, हमें उसे जीतना तो चाहिए ही।"

"मगर शत्रु कहकर गाली देनेसे ही तो वह छोटा न हो जायगा। प्रकृतिके पक्के-लिखे पट्टेके अनुसार वह दखलदार है,—उसके किस स्वत्वको कब कौन सिर्फ विद्रोह करके ही उड़ा सका है? फिर भी मज़ा यह है कि ऐसी ही युक्तियोंके बलपर आदमी अकल्याणके सिंहद्वारपर शान्तिका रास्ता टटोलता फिरता है। इससे शान्ति तो नहीं मिलती, स्वस्थता भी चली जाती है।

—शेष प्रश्न

मनुष्य जितना ही चाहता है, उतनी ही उसकी प्राप्त करनेकी शक्ति बढ़ती है। अभावपर विजय पाना ही जीवनकी सफलता है। उसे स्वीकार करके उसकी गुलामी करना ही कायरपन है।

—तरुणोंका विद्रोह

• • • धर्म

लड़ाई-झगड़ा, वाद-विवाद और होड़ा-होड़ी करके चाहे जो चीज़ मिल जाय पर धर्म-जैसी चीज़ नहीं मिल सकती।

—गृहदाह

हिन्दुओंमें जो लोग यह कहकर शिकायत करते हैं कि देश-विदेशमें उनका मस्तक हम लोग (ब्राह्मसमाजी, आर्यसमाजी आदि) जितना नीचा कर रहे हैं, उतना ईसाई-पादरी भी नहीं कर सकते हैं ठीक ही कहते हैं।...वास्तवमें विदेशी विधर्मियोंके हाथमें हम जैसे विभीषण और कोई नहीं दिखाई देते।

यदि ऐसा न होता तो मंदिरमें धर्मकी वेदीपर खड़े होकर रामके लिए 'रमवा', हरीके लिए 'हरिया', और नारायणके लिए 'नारायना' क्यों निकलता? सबको सम्बोधित करके वे उच्च कंठसे किसलिए इस बातकी घोषणा करते हैं कि अभागे लोग अगर अघाटमें डूब मरना नहीं चाहते तो हमारे इस पक्के घाटमें आवें। धर्मोपदेशकके ताल ठोंकनेसे समाजके सभी लोगोंका ख़ून भक्तिसे जैसे गर्म हो जाया करता है, उसी तरह श्रद्धासे कुछ भी हो उठता है।

—गृहदाह

जिस समय प्रतिदिन किये हुए नियमके पालनमें मनुष्य एकान्तमग्न रहता है, उस समय उसके नेत्रोंकी दृष्टि भी रुद्ध हो जाती है। उस समय वह किसी तरह यह नहीं देख सकता कि धर्म कौन-सा है और अधर्म कौन-सा है।

—नारीका मूल्य

धर्म वस्तुको एक दिन हम लोगोंने (ब्राह्मसमाजियोंने) जैसे दल बाँधकर मतलब गाँठकर पकड़ना चाहा था, वैसे उसे नहीं पकड़ा जा सकता। खुद पकड़ाई दिये बग़ैर शायद उसे पाया ही नहीं जा सकता। परम दुःखकी मूर्त्तिके रूपमें जब वह मनुष्यकी चरम वेदनाकी छातीपर पैर रखकर अकेला आ खड़ा हो, तब तो उसे पहचान ही लेना चाहिए—ज़रा भी भूल-भ्रांति उससे सही नहीं जाती; ज़रामें मुँह फेरकर लौट जाता है वह।

—गृहदाह

जिस धर्मने स्नेहकी मर्यादा नहीं रखने दी, जिस धर्मने निःसहाय आर्त नारीको मृत्युके मुँह में डाल जानेमें ज़रा भी दुविधा नहीं की, चोट खाकर जिस धर्मने बड़ेसे बड़े स्नेहशील वृद्धको भी ऐसा चंचल और प्रतिहिंसासे ऐसा निष्ठुर कर दिया, वह धर्म कैसा? जिसने उसे अंगीकार किया है वह कौन-सी सत्य वस्तुको ढो रहा है? जो धर्म है वह तो वर्मकी तरह आघात सहने हीके लिए है, यही तो उसकी अन्तिम परीक्षा है।

—गृहदाह

जिन लोगोंका भगवान् जितना ही अधिक सूक्ष्म और अधिक जटिल है, वे लोग उतने ही ज्यादा उलझकर मरते हैं, और जिन लोगोंके भगवान् जितने ही अधिक स्थूल और सहज हैं, वे लोग उलझनोंसे उतनी ही दूर, किनारेके निकट हैं।

—शेष प्रश्न

ईश्वरको मानना असलमें नुक़सानका कारोबार है। कारोबार जितना ही विस्तृत और व्यापक होगा, नुक़सान भी उतना ही बढ़ जायगा।

—शेष प्रश्न

प्रथा जब एक बार धर्मका रूप धारण करके खड़ी हो जाती है, जब उससे देवता प्रसन्न होने लगते हैं और परलोकका कर्म सँवरता है, तब फिर कोई भी निष्ठुरता असाध्य नहीं रह जाती। बल्कि कार्य जितना ही अधिक निष्ठुर होता है, और जितना ही अधिक बीभत्स होता है, पुण्यका वजन भी उतना बढ़ जाता है।

—नारीका मूल्य

मनुष्यका धर्म जब संसारका रूप धारण कर लेता है, तभी वह यथार्थ हो जाता है। जीवनके कर्त्तव्यमें फिर कोई संघर्ष या टक्कर नहीं होती। उसे माननेके लिए अपने ही साथ लड़-लड़कर नहीं मरना पड़ता।

—विप्रदास

संसारके साधारण नियमोंको ही सिर्फ़ मानते हैं लोग, उनके व्यतिक्रमको नहीं मानना चाहते। और मज़ा यह है कि इस व्यतिक्रमके ही बलपर टिका हुआ है धर्म, टिका हुआ है पुण्य, काव्य-साहित्य, अविचलित श्रद्धा और विश्वास; सब कुछ।

—विप्रदास

जिस धर्म-कर्ममें मन प्रसन्न न होकर ग्लानिके भारसे काला ही होता रहता है, उसे धर्म समझकर अंगीकार ही कैसे किया जाता है?

—श्रीकान्त, पर्व ३

जो लोग अधर्मसे नहीं डरते और जिन्हें लज्जा नहीं, उन लोगोंको अगर प्राणोंका भय इतना अधिक न हो तो यह संसार मिट्टीमें मिल जाय।

—रमा

धर्मका दण्ड माँका मुँह नहीं देखता रहता।

—रमा

अन्यायको क्षमा करना, यह सच है, अधर्मको प्रश्रय देना है, किन्तु इस बातको भी तो स्वीकार किये बिना नहीं रहा जा सकता कि अधर्म भी धर्मका ही एक रूप है, एक पहलू है। जो क्षमा प्रेम-प्यारके बीच पैदा होती है, उस प्रेमका मर्म अगर कभी तुम जान पाओगे, तो समझ सकोगे कि अन्याय, अधर्म और अक्षमताको क्षमा करके प्रश्रय देना धर्मका ही अनुशासन है।

—चरित्रहीन

कोई भी धर्म हो, उसके कट्टरपनको लेकर गर्व करनेके बराबर मनुष्यके लिए ऐसी लज्जा की बात, इतनी बड़ी बर्बरता और दूसरी नहीं है।

—निबन्धावली—वर्तमान हिन्दू-मुसलिम-समस्या

एक बड़े मज़ेकी बात है कि संसारके सबसे अधिक प्रसिद्ध नास्तिक सबसे बढ़कर बेवकूफ़ रहे हैं। भगवान्‌की लीलाका अन्त नहीं है, वे अपने इस 'न' रूपमें ही उनके मनका पन्द्रह आना भाग भरे रहते हैं, इस बातका उन्हें ख़्याल ही नहीं आता।

—स्वामी

"तुम तो भगवान् को नहीं मानते, पर जो वास्तवमें मानता है, वह दिन-रात प्रार्थना करता है कि उसके 'विश्वास' को वे नष्ट न कर दें।"

—गृहदाह

संसारमें वे हमेशासे अत्याचारसे दबे हुए हैं, पीड़ित हैं, दुर्बल हैं, और इसीलिए मनुष्यके स्वाभाविक अधिकारसे सबलों द्वारा वंचित कर दिये गये हैं; अपनेपर विश्वास करनेका दुनियामें कोई कारण, जिन्हें ढूँढ़े नहीं मिलता,—देवता और दैवके प्रति उन्हींका विश्वास सबसे ज्यादा होता है।

—अधिकार

मनुष्यके दोषों और गुणोंका आरोप करके छोटे-मोटे ठाकुर देवता बनाकर, निरक्षर-अपढ़ लोग जिस तरह भक्तिसे भावना करते हैं, वैसे ही केवल भावना की जा सकती है। नहीं तो ज्ञानके अभिमानसे ब्रह्म बनाकर जो लोग उसे सोचना चाहते हैं, वे केवल अपनेको धोखा देते हैं।

—चरित्रहीन

सिर्फ़ हिन्दू धर्ममें ही नहीं, यह विश्वास सभी धर्मोंमें है। मगर सिर्फ़ विश्वासके ज़ोरसे ही तो कोई बात कभी सत्य नहीं हो जाती। न त्यागके ज़ोरसे ही वह सच हो सकती है और न मृत्यु-वरण करनेके ज़ोरसे ही। संसारमें अत्यन्त तुच्छ-तुच्छ मतभेदोंके कारण बहुत-से प्राणोंका बहुत बार लेना-देना हो चुका है। उससे ज़िदका ज़ोर ही प्रमाणित हुआ है, विचारोंकी सत्यता प्रमाणित नहीं हुई। योग किसे कहते हैं सो मैं नहीं जानती, अगर वह निर्जन स्थानमें बैठकर केवल आत्मविश्लेषण और आत्म-चिंतन करना ही है तो मैं यही बात ज़ोरके साथ कहूँगी कि इन दो सिंहद्वारोंसे जितने भ्रम और जितने मोहने प्रवेश किया है, उतना और कहींसे नहीं। ये दोनों अज्ञानके ही सहचर हैं।

—शेष प्रश्न

• • • शास्त्र

इस संसारमें जो कुछ सोचने-विचारनेकी वस्तु थी, वह समस्त ही त्रिकालज्ञ ऋषिगण भूत, भविष्य, और वर्तमान, इन तीनों कालोंके लिए पहलेसे ही सोच-विचारकर स्थिर कर गये हैं, दुनियामें अब नये सिरेसे चिन्ता करने को कुछ बाक़ी ही नहीं बचा। मैं जानता हूँ कि इसका जवाब देते ही आलोचना पहले तो गरम और फिर व्यक्तिगत कलहमें परिणत होकर अत्यंन्त कड़वी हो उठती है। त्रिकालज्ञ ऋषियों की मैं अवज्ञा नहीं कर रहा हूँ, मैं भी उनकी अत्यन्त भक्ति करता हूँ, मैं तो सिर्फ़ इतना ही सोचता हूँ कि वे दया करके अगर सिर्फ़ हमारे इस कालके लिए न सोच जाते, तो अनेक दुरूह चिन्ताओंके दायित्वसे वे भी छुटकारा पा जाते और हम भी सचमुच ही आज जीवित रह सकते।

—श्रीकान्त, पर्व ३

वे (शास्त्रकार) कह गये हैं कि पैशाच विवाह भी विवाह है। पुरुषोंके साथ उनकी इतनी अधिक सहानुभूति है, उनपर उनकी इतनी अधिक दया है। अगर उन शास्त्रकारोंमें इतनी दया न होती तो क्या पुरुष उन्हें कभी मानते? या आज इस बीसवीं शताब्दीमें उन शास्त्रकारोंके पास यह पूछनेके लिए दौड़े जाते कि इस बीसवीं शताब्दीमें भी विधवा-विवाह करना उचित है या नहीं? वे न जाने कबके सब पोथी-पत्रे उठाकर नदीमें डुबो देते और अपने मनके मुताबिक एक नया शास्त्र बना डालते।

—नारीका मूल्य

पुरुप उस समय (समाज-व्यवस्थापर विचार करनेके समय) पिता बनाकर कन्याके दुःखका विचार नहीं करता। वह उस समय केवल पुरुप रहकर पुरुषोंके स्वार्थका ही विचार करता है। वह केवल इसी प्रकारके उपायों की उद्‌भावना करता रहता है कि स्त्रियोंसे किस प्रकार और कितना अधिक वसूल किया जा सकता है। इसके बाद मनु आते हैं, पराशर आते हैं, मूसा आता है, पाल आते हैं, । और वे लोग श्लोकपर श्लोक बनाते जाते और शास्त्रोंकी रचना करते जाते हैं। स्वार्थ उस समय धर्म बनकर मजबूत हाथोंसे समाजका शासन करनेका अधिकार प्राप्त करता है। देशका पुरुप-समाज व्यासदेव होता है, और शास्त्रकार केवल उस समाजके बनाये हुए नियमोंको लिखनेवाले गणेश जी। सभी देशोंके शास्त्र बहुत कुछ इसी प्रकार प्रस्तुत हुए हैं।

—नारीका मूल्य

इस बातका हम एकबार भी विचार नहीं करते कि पंडित केवल शास्त्रोंके श्लोक ही जानते हैं, इसके सिवा और कुछ भी नहीं जानते। हमलोग इस बातका विचार नहीं करते कि यदि विद्याका चरम उद्देश्य हृदयको प्रशस्त करना है, तो फिर उन पंडितोंमेंसे अधिकांशका पढ़ना-लिखना बिलकुल ही व्यर्थ हुआ है।

—नारीका मूल्य

वास्तवमें यदि कोई शास्त्र पुरुपोंके आन्तरिक अभिप्रायोंके साथ मेल न खाता हो, तो फिर पुरुप उसे अधिक दिनों तक नहीं मानते। जो शास्त्र उनके अभिप्रायोंसे मेल खा जाता है वह तो तुरन्त ही टकसाली हो जाता है, और नहीं तो अगर स्वयं भगवान् भी उतर आयें और बीच सड़कमें खड़े होकर और स्वयं अपने मुँहसे चिल्लाकर कहें, तो भी उसे कोई नहीं मानता।

—नारीका मूल्य

दुर्गा-पूजाके समय महाष्टमी दो घड़ी आगे हो या पीछे हो, बिल्ली मारनेका प्रायश्चित्त एक गण्डा रुपये हों या पाँच गण्डे रुपये हों, महन्तजी महाराज वेश्या रखनेसे स्वर्ग जायेंगे या विवाह करनेसे पतित होंगे,—आदि प्रश्नोंकी मीमांसा वही लोग (पंडित) करें, इसमें हमें कुछ भी आपत्ति नहीं। परन्तु समाजकी भलाई या बुराई किस बातमें है और किस बातमें नहीं है, किस नियमको प्रचलित करनेसे अथवा किस नियममें परिवर्तन करनेसे आधुनिक समाजका कल्याण या अकल्याण होगा, स्वदेशके हितके लिए विलायत जानेमें जात जायगी या नहीं, आदि दुरूह विषयोंमें उनका हाथ डालना अनधिकार चर्चा ही है।

—नारीका मूल्य

एक सिर्फ़ हमारे देशके ही नहीं, दुनियाके किसी भी देशके पुरखा 'शेष-प्रश्न' का जवाब नहीं दे गये हैं। दे गये हों ऐसा हो भी नहीं सकता, क्योंकि फिर तो सृष्टि ही रुक जाती। इसके चलनेका कोई अर्थ ही नहीं रह जाता।

—शेष प्रश्न

मन ही अगर दिवालिया हो जाय, तो फिर पुरोहितके विवाह-मंत्रको महाजन बनाके खड़ा करनेसे सूद भले ही अदा हो जाय, पर असल तो डूब ही जायगा।

—शेष प्रश्न

जो सत्य है, उसीको सब समय, सभी अवस्थाओंमें ग्रहण करनेकी चेष्टा करो। इससे चाहे वेद ही मिथ्या हो जाय, चाहे शास्त्र ही मिथ्या हो जायें। ये सत्यसे बढ़कर नहीं हैं, सत्यकी तुलनामें इनका कोई मूल्य नहीं है।

—चरित्रहीन

एक दिनके किसी एक अनुष्ठान (विवाह) के ज़ोरसे अगर उसका (स्त्री) छुटकारेका रास्ता सारे जीवनके लिए रोक दिया जाय तो वह श्रेयकी व्यवस्था नहीं मानी जा सकती। संसारमें सभी भूल-चूकोंके सुधारकी व्यवस्था है, कोई उसे बुरा नहीं बताता; फिर भी जहाँ भ्रान्तिकी सम्भावना सबसे ज्यादा है (विवाहमें), और उसके निराकरणकी आवश्यकता भी उतनी ही अधिक है, वहीं लोगोंने अगर सारे उपायोंको अपनी इच्छासे बन्द कर रखा हो तो वह अच्छा कैसे मान लिया जाय।

—शेष प्रश्न

यह कहना कि आचार-अनुष्ठान मनुष्योंके लिए धर्मसे भी बड़ी वस्तु है वैसा ही है जैसा कि राजाकी अपेक्षा राजाके कर्मचारियोंको बड़ा बताना।

—शेष प्रश्न

"संसारमें सत्य ही बड़ा है, इस बातको हम सभी मानते हैं, पर अनुष्ठान भी तो मिथ्या नहीं है।"

—शेष प्रश्न

"अनुष्ठानको मैं मिथ्या तो कह नहीं रही। जैसे कि प्राण भी सत्य हैं और देह भी,—लेकिन जब प्राण निकल जाते हैं तब?"

—शेष प्रश्न

"आचार-अनुष्ठानको झूठा बताकर मैं उड़ा देना नहीं चाहती; मैं करना चाहती हूँ सिर्फ़ उसमें परिवर्तन। समयके धर्मानुसार आज जो अचल हो रहा है, चोट पहुँचाकर मैं उसीको सचल कर देना चाहती हूँ।"

—शेष प्रश्न

समाजके प्रचलित विधि-विधानोंके उल्लंघन करनेका दुःख सिर्फ़ चरित्रबल और विवेक-बुद्धिके बलपर ही सहन किया जा सकता है।

—शेष प्रश्न

कोई भी धर्म-ग्रन्थ कभी अभ्रान्त सत्य नहीं हो सकता। वेद भी धर्म-ग्रंथ हैं, अतएव उनमें भी मिथ्याका अभाव नहीं है।

—चरित्रहीन

"शास्त्रकी ज़बर्दस्ती और दम्भकी बातें सुनकर मेरी देह जल उठती है। तुम भी नहीं जानते, मैं भी नहीं जानती। तो फिर भाई इतनी ज़बर्दस्ती, इतना विधि-निषेधका आडम्बर, इतनी मिथ्या बातोंसे झोली भरनेकी चेष्टा क्यों? सारे ही कामोंमें मानो भगवान्‌ उन्हें मध्यस्थ रख कर काज करते हैं, ऐसी दाम्भिक अनुशासनोंकी धूम है। खाते-पीते, उठते-बैठते भगवान्‌की दोहाई और धर्मकी दाँता-किटकिट। क्यों भाई, क्यों इस तरह हँसे, क्यों इस तरह खाँसे, अथच तेज इतना कि कहीं पर किसीने रत्तीभर भी कारण दिखानेकी ज़रूरत नहीं समझी। सिर्फ़ ज़बर्दस्ती ही ज़बर्दस्ती! तुमको गोहत्या, ब्रह्महत्याका पाप लगेगा, तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा, तुम्हारी चौदह पीढ़ियाँ नरकमें गिरेंगी। क्यों गिरेंगी? तुमसे यह किसने कहा? श्रुति, स्मृति, तन्त्र, पुराण, सभीमें यह ज़ोर-ज़बर्दस्ती और लाल आँखें दिखाना है।"

—चरित्रहीन

• • • क्रान्ति

क्रान्तिकारी—देशकी मिट्टी इनकी देहका मांस है, देशका पानी इनकी नसोंका खून है—सिर्फ़ देशकी मिट्टी-पानी ही नहीं, देशके पहाड़-पर्वत, वन-जंगल, सूर्य-चन्द्र, नदी-नाले, छाया-प्रकाश जो भी कुछ है, सबको मानो अपने सब अंगोंसे ये सोख लेना चाहते हैं। शायद इन्हींमेंसे किसीने किसी सतयुगमें पहले-पहल जननी-जन्मभूमि शब्दका आविष्कार किया था।

—अधिकार

क्रान्तिकारी—उनकी नस-नसमें भगवान्ने ऐसी आग जला दी है कि उन्हें चाहे जेलमें ठूँस दो, चाहे शूली पर चढ़ा दो,—कह न दिया कि पञ्च-भूतोंको सौंपनेके सिवा और कोई सज़ा ही लागू नहीं होती। न तो इनमें दया-माया है, न धर्म-कर्म ही मानते हैं।

—अधिकार

क्रान्ति शान्ति नहीं है। उसे हिंसामेंसे ही चलना पड़ता है,—यही उसका वर है और यही उसका अभिशाप।

— अधिकार

आदमीके चलनेका रास्ता आदमी बिना लड़े कभी नहीं छोड़ता।

—अधिकार

'हड़ताल' नामक एक चीज़ है, पर 'निरुपद्रव हड़ताल' नामकी कोई चीज़ नहीं है। संसारमें कोई भी हड़ताल कहीं सफल नहीं होती जब तक उसके पीछे बाहुबल न हो।

—अधिकार

अशान्ति फैलानेके माने अकल्याण फैलाना नहीं है। 'शान्ति, शान्ति, शान्ति'—सुनते-सुनते कान बहरे हो गये। मगर इस असत्यका कौन लोग प्रचार करते हैं, जानती हो? इस मिथ्या मंत्रके ऋषि वहीं हैं जो दूसरोंकी शान्ति लूटकर बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ और प्रासाद बनाकर रास्ता रोक बैठे हैं। वञ्चित, पीड़ित और उपद्रवित नर-नारियोंके कानमें लगातार इस मंत्रको जप-जपकर उन्हें ऐसा कर दिया है कि वे भी अशान्तिके नामसे चौंक पड़ते हैं और सोचते हैं कि शायद यह पाप है, शायद यह अमंगल है। बँधी हुई गायको भूखों मरते देखा है? वह खड़ी-खड़ी मर जाती है, मगर उस पुरानी कमज़ोर रस्सीको तोड़ कर मालिककी शान्ति नष्ट नहीं करती।

—अधिकार

धनिककी आर्थिक हानि और ग़रीबका अनशन एक चीज़ नहीं। ग़रीबके उपायहीन बेकार दिन उसे दिनपर दिन भुखमरीकी ओर ढकेलते ले जाते हैं। उसके बाल-बच्चे और स्त्री-परिवार सब भूखे रोते रहते हैं,—उनका लगातारका क्रन्दन आख़िर उसे पागल बना देता है और तब उसे दूसरेका अन्न छीन खानेके सिवा जीवन-धारणका और कोई उपाय नहीं सूझता।

—अधिकार

जो चिनगारी शहर भरको जलाकर भस्म कर देती है वह आकारमें कितनी बड़ी होती है? शहर जब जलता है तब अपना ईंधन आप ही इकट्ठा करके भस्म होता रहता है—उसके भस्म होनेकी सामग्री उसीमें संचित रहती है। विश्वविधानके इस नियमका कोई भी राजशक्ति किसी भी दिन व्यतिक्रम नहीं कर सकती।

—अधिकार

वस्त्रहीन, अन्नहीन, ज्ञानहीन, दरिद्रोंका पराजय तो सत्य हुआ और उनके सारे हृदयमें जो ज़हर (असन्तोष) भरकर चारों ओर फैलने लगता है, वह सत्य नहीं होगा ? वही तो हमारा मूलधन है। कहीं भी किसी देशमें सिर्फ़ क्रान्तिके लिए क्रान्ति नहीं मचाई जा सकती, उसका कोई न कोई आधार अवश्य होना चाहिए। यही तो हमारा (क्रान्तिकारियोंका) अवलम्बन है। जो मूर्ख इस बातको नहीं जानता—सिर्फ़ मज़दूरोंकी कमी-बेशीके लिए हड़ताल कराना चाहता है, वह मज़दूरोंका भी सर्वनाश करता है और देशका भी। (अन्तिम उद्देश्य स्वाधीनताकी ओर संकेत है)

—अधिकार

आइडिया (Idea) के लिए,—आदर्शके लिए प्राण देने लायक प्राणोंकी आशा शान्तिप्रिय निर्विरोध किसानोंसे करना वृथा है। वे स्वाधीनता नहीं चाहते, वे चाहते हैं शान्ति;—जो शान्ति असमर्थ और अशक्तोंकी है—वह पंगु जड़त्व ही उनकी अधिक कामनाकी वस्तु है।

—अधिकार

इसके सिवा हम क्रान्तिकारी हैं, पुरानेका मोह हम लोगोंमें नहीं है। हमारी दृष्टि, हमारी गति, हमारा लक्ष्य सिर्फ़ सामनेकी तरफ़ है। पुरानेको ध्वंस करके ही तो हमें रास्ता बनाना पड़ता है। जीर्ण और मृत ही अगर रास्ता रोके रहेंगे, तो हमारे अधिकारके दावेको रास्ता कैसे मिलेगा ?

—अधिकार

पराधीन देशकी मुक्ति-यात्रामें रास्तेका परहेज कैसा ? पराधीन देशके शासकों और शासितोंकी नैतिक बुद्धि जब एक-सी हो जाती है तो उससे बढ़कर देशका दुर्भाग्य और कुछ नहीं होता।

—अधिकार

अपने भइया (क्रान्तिकारी) को फाँसी होनेका समाचार जब कभी सुनो, तो समझ लेना कि विदेशियोंके हुक्मसे वह फाँसी अपने ही देशके किसी आदमीने उसके गलेमें पहनाई है। पहनायेगा ही। कसाई-खानेमेंसे गऊका मांस गऊ ही तो ढोकर लाती है। फिर उसकी शिकायत कैसी ?

—अधिकार

दूरसे आकर जिन लोगोंने हमारी जन्मभूमिपर कब्जा कर रखा है, हमारी मनुष्यता, हमारी मान-मर्यादा, हमारी भूखका अन्न और प्यासका पानी—सब कुछ जिन लोगोंने छीन लिया है उनको तो हमारी हत्या करनेका अधिकार है और हमको नहीं ? यह धर्मबुद्धि तुम्हें भला कहाँसे मिली ? छिः।

—अधिकार

शान्ति-स्वस्तिहीन, सम्मानवर्जित प्राण क्या केवल भारतके तरुणोंके-लिए ही इतने बड़े लोभकी वस्तु है ? देशको क्या बूढ़े लोग बचावेंगे ? इतिहास पढ़कर देखो। तरुण-शक्तिने हरएक देशमें, हर समयमें अपनी मृत्युसे जन्मभूमिको ध्वंसके ग्राससे बचाया है।

—तरुणोंका विद्रोह

किसी भी देशमें केवल विप्लवके लिए ही विप्लव नहीं लाया जाता। अर्थहीन-अकारण विप्लवकी चेष्टामें केवल रक्तपात ही होता है, और कोई फल नहीं प्राप्त होता। विप्लवकी सृष्टि मनुष्यके मनमें होती है केवल रक्तपातमें नहीं।

—तरुणोंका विद्रोह

बाघको विष्णुमंत्र सुनानेसे वह वैष्णव होता है या नहीं, यह मैं नहीं सोच पाता।

—निबन्धावली—शिक्षाका विरोध

स्वाधीनताके संग्राममें विप्लव ही अपरिहार्य मार्ग नहीं है। जो लोग यह समझते हैं कि दुनियामें और सब कामोंके लिए आयोजनका प्रयोजन है, केवल विप्लव ही ऐसा काम है जिसमें तैयारीकी ज़रूरत नहीं होती—उसे शुरू कर देनेसे ही चल जाता है, वे और चाहे जितना कुछ जानें, विप्लव-तत्त्वकी कोई ख़बर ही नहीं जानते।

—तरुणोंका विद्रोह

बाघके मुँहपर खड़े होकर, हाथ जोड़कर, उससे वैष्णव होनेका अनुरोध करनेका कुछ फल होनेका भरोसा जैसा मुझे नहीं होता, वैसे ही यह विश्वास भी मैं नहीं करता कि जो वरका बाप कन्यादायग्रस्तके कान उमेठकर रुपये वसूल करनेकी आशा रखता है उसे दाता कर्ण बननेका उपदेश देनेसे कुछ लाभ होगा।

—निबन्धावली—स्वराज्यकी साधनामें नारी

• • • स्वाधीनता और संस्कृति

जिसका भार, जिसका गौरव तुमलोग सम्हाल नहीं सकते, उसपर तुम्हारा यह व्यर्थका लोभ किस लिए? स्वाधीनताका जन्मगत अधिकार है, सिर्फ मनुष्यत्वको, केवल मनुष्यको नहीं; इस बातको कौन अस्वीकार करेगा?

—अधिकार

मुक्ति क्या इतनी छोटी ज़रा-सी चीज़ है? डरो क्या तुम आरामसे नहानेका हौज समझे बैठे हो? नहीं, वह समुद्र है। उसमें भय तो है ही—उत्ताल तरंगें तो उसमें होंगी ही और मगर आदि भी होंगे, नावें वहीं डूबती हैं,—फिर भी वहीं जगत्के प्राण हैं,—उसीमें सम्पूर्ण शक्ति, समस्त सम्पदा और सम्पूर्ण सार्थकता है। निरापद तालाबके भरोसे सिर्फ प्राण धारण किया जा सकता है,—जीवित नहीं रहा जा सकता।

—अधिकार

मनुष्यका विचार ही उसके कार्यको नियंत्रित करता है; परन्तु दूसरोंके विचार-द्वारा निर्धारित कार्य जब हमारे स्वाधीन विचारका मुँह बन्द कर देता है तब उससे बढ़कर आत्महत्या मेरी समझमें हमारे लिए और कुछ हो ही नहीं सकती।

—अधिकार

स्वाधीनता ही स्वाधीनताका अन्त नहीं है। धर्म, शान्ति, काव्य-आनन्द—यह और भी बड़े हैं। इनके चरम विकासके लिए स्वाधीनता चाहिए, नहीं तो उसका मूल्य ही क्या है?

—अधिकार

यदि सभ्यताके कुछ भी मानी हों, तो वह यही हैं कि असमर्थ और कमज़ोरोंके न्यायोचित दावे ज़बर्दस्तोंके बाहुबलसे परास्त न हों।

—अधिकार

कोई भी आदर्श सिर्फ़ इसलिए कि वह बहुत काल तक स्थायी रहा है, नित्य स्थायी नहीं हो सकता और उसके परिवर्तनमें लज्जाकी कोई बात नहीं, उससे जातिकी अगर विशिष्टता भी जाती हो तो भी नहीं। कितने काव्य, कितने कथानक, कितनी धर्म-कथाएँ इसपर रची जा चुकी हैं। अतिथिको खुश करनेके लिए दाता कर्णने अपने पुत्र तककी हत्या कर दी थी। इस बातपर न जाने कितने आदमियोंने आँसू बहाये होंगे। फिर भी, यह कार्य आज सिर्फ़ कुत्सित ही नहीं बल्कि बीभत्स माना जायगा। एक सती स्त्रीने पतिको कंधेपर रखकर गणिकालय पहुँचा दिया था,—सतीत्वके इस आदर्शकी भी किसी दिन तुलना नहीं थी,—मगर आज अगर ऐसी घटना कहीं हो जाय तो वह मनुष्यके हृदयमें सिर्फ़ घृणा ही उत्पन्न करेगी।

—शेष प्रश्न

हो अनेक युगोंका। सिर्फ़ वर्ष गिनकर ही आदर्शका मूल्य नहीं आँका जाता। अचल अटल ग़लतियोंसे भरे समाजके हज़ारों वर्ष भी, सम्भव है, भविष्यके दस वर्षके गतिवेगमें बह जायँ। वे दस वर्ष ही उन हज़ारों वर्षोंसे बहुत ज्यादा बड़े हैं।

—शेष प्रश्न

बाहर अगर प्रकाश हो रहा हो और पूर्व आकाशमें अगर सूर्योदय हो रहा हो, तो भी पीछे मुड़कर पश्चिमके स्वदेशकी ओर देखना पड़ेगा! और वहाँ होगा स्वदेश-प्रेम!

—शेष प्रश्न

"यह कोई युक्ति नहीं है कि प्राचीन कालके ढाँचेमें ढाल देना ही वास्तवमें मनुष्य बना देना है ?"

"लेकिन वही तो हमारे भारतवर्षका आदर्श है ।"

"पर यह किसने तय किया कि भारतका आदर्श ही चिर युगका चरम आदर्श है ?"

—शेष प्रश्न

किसी एक देश-विशेषमें पैदा हो जानेकी वजहसे ही उसका आचार-विचार छातीसे क्यों चिपटाये रहना पड़ेगा ? चली ही गई उसकी अपनी विशेषता, तो इसमें हर्ज़ किस बातका ? इतनी ममता क्यों ? विश्वके समस्त मानव अगर एक ही विचार, एक ही भाव, एक ही विधि-विधानकी ध्वजा थामके खड़े हो जायँ, तो इसमें हानि ही क्या है ? यही डर है न कि फिर भारतीयके तौरपर हम पहचाने नहीं जायेंगे ? न पहचाने जायँ, न सही । इस परिचयपर तो कोई आपत्ति नहीं करेगा कि विश्वकी मानव-जातिमें हम एक हैं, उसका गौरव क्या कुछ कम है ?

—शेष प्रश्न

यही बात है ! ऐसा ही काम है देशका कि माँको भी नहीं माना जा सकता ।

—विप्रदास

योग्य नहीं बनोगे तो योग्यताका पारितोषिक तुम्हें कौन देगा ? अयोग्य होनेपर भी किसी तरह अगर तुम योग्यताका पुरस्कार पा ही गये तो वह कै रोज़ रहेगा तुम्हारे पास ? श्रीमंतोंके कपूतोंकी भाँति पलक मारते-न-मारते लक्ष्मी ग़ायब हो जायगी ।

—आगामी काल

अब मालूम हुआ है कि (स्त्रियोंको) स्वाधीनता तत्त्व-विचारसे नहीं मिलती, न्याय और धर्मकी दुहाई देनेसे भी नहीं मिल सकती, सभामें खड़े होकर पुरुषोंके साथ कलह करनेसे भी नहीं मिलती—असल में स्वाधीनता-जैसी चीज़ कोई किसीको दे ही नहीं सकता—लेने-देनेकी यह चीज़ ही नहीं। स्वाधीनता हमारी अपनी पूर्णतासे, आत्माके अपने विस्तारसे, स्वतः ही आ जाती है। बाहरसे अंडेका छिलका तोड़कर भीतर के जीवको मुक्ति देनेसे वह मुक्ति नहीं पाता, बल्कि मर जाता है।

—शेष प्रश्न

इमेन्सिपेशन (Emancipation मुक्ति) के लिए चाहे कितनी ही स्त्रियाँ मिलकर झगड़ा क्यों न करतीं, देनेवाले असल मालिक पुरुष ही हैं, हम स्त्रियाँ नहीं। संसारके क्रीत दासोंको उनके मालिकोंने ही एक दिन स्वाधीनता दी थी, और उस दिन उनकी तरफ़से लड़े भी थे वे ही जो मालिकोंकी जातिके थे—दासोंने युद्धके बलपर या युक्तियोंके बलपर स्वाधीनता नहीं पाई। विश्वका नियम ही यह है कि शक्तिमान् ही शक्तिके बन्धनसे दुर्बलोंको परित्राण देते हैं।

—शेष प्रश्न

चाहे लौकिक आचार-अनुष्ठान हो और चाहे पारलौकिक धर्म-कर्म, अपने देशकी चीज़ समझकर उसे गले लगाये रहनेमें स्वदेश-भक्तिकी वाहवाही तो मिल सकती है, पर स्वदेशके कल्याणके देवता उससे खुश नहीं किये जा सकते। बल्कि वे इससे नाराज़ ही होते हैं।

—शेष प्रश्न

काठके चर्खेसे लोहेकी मशीनको हराया नहीं जा सकता और ऐसा हो भी जाय तो उससे मनुष्यके कल्याणका मार्ग प्रशस्त नहीं होता।

—तरुणोंका विद्रोह

× × × किन्तु स्वाधीनता केवल नाममात्र ही तो नहीं है। दाताके दाहिने हाथके दान ही से तो इसे भीखकी तरह पाया नहीं जाता—इसका मूल्य देना होता है ।

—तरुणोंका विद्रोह

केवल घटनाक्रमसे भारतवर्षमें पैदा हुआ हूँ, इसलिए भारतकी स्वाधीनताके अधिकारका ज़ोरसे दावा करना भी किसी तरह सत्य नहीं हो सकता। काम करेंगे नहीं, मूल्य देंगे नहीं, फिर भी पावेंगे, प्रार्थना का यह अद्भुत ढंग ही अगर हमने पकड़ा है तो निश्चय ही मैं कहता हूँ कि केवल समस्वर और ज़ोरदार गलेसे वन्दे मातरम् और महात्माजीकी जय-ध्वनिसे गला फाड़नेसे हमारा रक्त ही बाहर निकलेगा, पराधीनताकी भारी शिला सुईकी नोकभर भी टससे मस न होगी ।

—निबन्धावली–मेरी बात

जान पड़ता है पराधीन देशका सबसे बड़ा अभिशाप यह है कि मुक्ति-संग्राममें विदेशियोंकी अपेक्षा देशके आदमियोंके साथ ही मनुष्यको अधिक लड़ना पड़ता है ।

—निबन्धावली-देशबन्धु चित्तरंजन

अगर ऐसा दुर्दिन कभी भारतको नसीब हो—वह अपने विगत जीवनके सारे ट्रैडीशन (परम्पराएँ) भूलकर इतना उन्नत हो उठे कि काले चमड़ेके सिवाय पश्चिमके साथ उसका कोई भेद ही न रह जाय तो भारतके भाग्य-विधाता ऊपर बैठे-बैठे उस दिन हँसेंगे या अपने बाल नोचेंगे, यह कहना कठिन है ।

—निबन्धावली-शिक्षाका विरोध

• • • स्फुट

"यह हम औरतोंका स्वाभाविक धर्म ही है। हम अपने और पराये को एक ही दिनमें भूल जाती हैं।"

—पथ-निर्देश

ज़ोर-ज़बर्दस्तीसे जंगलके शेरको वशमें लाया जा सकता है, मगर ज़बर्दस्ती एक छोटा-सा फूल भी विकसित नहीं किया जा सकता।

—काशीनाथ

सूर्यकी अपेक्षा उससे तपे हुए बालूके संयोगसे ही शरीरमें अधिक फफोले पड़ते हैं।

—स्वामी

जो शराबी एक बार ख़ालिस शराब पीना सीख लेता है, उसे पानी मिली हुई शराब थोड़े ही अच्छी लगती है। तब तो निर्जल विष की ज्वालासे ही अपना कलेजा जलानेमें उसे अधिक सुख मिलता है।

—स्वामी

शराबी मित्रपर कोई चाहे कितना ही अधिक प्रेम क्यों न करे, पर जब किसीके ऊपर निर्भर करनेका अवसर आता है तब वह भरोसा करता है केवल उसीपर जो शराब नहीं पीता।

—स्वामी

संसारमें सृष्टि-विरुद्ध भले आदमी बने रहनेसे ही काम नहीं चलता; साथमें यह भी सीखने की आवश्यकता है कि कर्त्तव्य-पालन किस प्रकार करना चाहिए।

—स्वामी

जब किसी लड़केको उसकी मां ज़बरदस्ती खींचकर अपनी गोदमें लिटा लेती है, तब बाहरसे देखनेपर वह एक अत्याचार-सा मालूम होता है, पर उस अत्याचारके मध्यमें भी लड़केके सो जानेमें कुछ अड़चन नहीं आती।

—स्वामी

एक तो वैसेही मनुष्यकी मानसिक गतिविधि बहुत ही दुर्जेय होती है, और फिर किशोर-किशोरीके मनका भाव तो, मैं समझता हूँ बिल्कुल ही अज्ञेय है। इसीलिए शायद, श्रीवृन्दावनके उन किशोर-किशोरीकी किशोर-लीला चिरकालसे ऐसे रहस्यसे आच्छादित चली आती है। बुद्धिके द्वारा ग्राह्य न कर सकनेके कारण किसीने उसे कहा—'अच्छी' किसीने कहा 'बुरी'—किसीने नीतिकी दुहाई दी, किसीने रुचिकी और किसीने कोई भी बात न सुनी—वे तर्क-वितर्कके समस्त घेरोंका उल्लंघनकर बाहर हो गये, वे डूब गये, पागल हो गये और नाचकर, रोकर, गाकर—एकाकार करके संसारको उन्होंने मानो एक पागलखाना बना छोड़ा। तब जिन लोगोंने 'बुरी' कहकर गालियाँ दी थीं, उन्होंने भी कहा कि—और चाहे जो हो, किन्तु ऐसा रसका झरना और कहीं नहीं है। जिनकी रुचिके साथ इस लीलाका मेल नहीं मिलता था उन्होंने भी स्वीकार किया, इस पागलोंके दलको छोड़कर हमने ऐसा गान और कहीं नहीं सुना। किन्तु यह घटना जिस आश्रयको लेकर घटित हुई, जो सदा पुरातन है, और साथ ही चिर नूतन भी—वृन्दावनके वन-वनमें होनेवाली किशोर-किशोरीकी उस सुन्दरतम लीलाका अन्त किसने कब खोज पाया है? जिसके निकट वेदान्त तुच्छ है और मुक्तिफल जिसकी तुलनामें वारिधिके आगे वारि-बिन्दुके समान क्षुद्र है। न किसीने खोज पाया और न कोई कभी खोज पायगा।

—श्रीकान्त, पर्व १

"सब लोग तो उसे नहीं ठगेंगे; हाँ, कुछ लोग अवश्य ठग लेंगे। मगर वह तो किसीको न ठगेगा? बस यही बहुत है। तब लक्ष्मीजी उसके हाथमें आप ही आ जायँगी।"

—वैकुण्ठका दानपत्र

"कहाँ तो होना यह चाहिए कि बड़े-बड़े आदमियोंकी पुस्तकें पढ़ कर लोग भले बनें और एक दूसरेके साथ प्रेम करें, सो तो नहीं, एक ऐसी किताब लिखकर रख दी कि जिसे पढ़ते ही मनुष्यके प्रति मनुष्यके मनमें घृणा उत्पन्न हो जाय और इस बातपर विश्वास ही न हो कि सचमुच ही सब लोगोंके अन्तःकरणमें भगवान्‌का मन्दिर है।

—अन्धकारमें आलोक

हाँ, सो मनुष्यका स्वभाव ही है। तनिक-सा दोष देखते ही, कुछ क्षण पूर्वकी सभी बातें भूलते उसे कितनी-सी देर लगती है।

—श्रीकान्त, पर्व १

इतर (छोटे) लोग ही अनजान, अपरिचित लोगोंकी बातमें संदेह करते और भयसे पीछे हट जाते हैं।

—श्रीकान्त, पर्व १

(अपनेसे बड़ेकी मित्रता करनेका फल यह होता है) कि देखते-देखते 'मित्र' प्रभु बन जाता है, और साधकी मित्रताका पाश दासत्व की बेड़ी बनकर 'छोटे' के पैरोंको जकड़ लेता है।

—श्रीकान्त, पर्व १

अभिमान भी इतना मीठा होता है!—जीवनमें उसके स्वादको उस दिन सबसे पहले उपलब्ध करके मैं बच्चेकी तरह एकान्तमें बैठ गया और लगातार चख-चखकर उसका उपभोग करने लगा।

—श्रीकान्त, पर्व १

रात्रिका भी रूप होता है और उसे, पृथ्वीके झाड़-पाले, गिरि-पर्वत आदि जितनी भी दृश्यमान वस्तुएँ हैं, उनसे अलग करके देखा जा सकता है। मैंने आँख उठाकर देखा कि अन्तहीन काले आकाश (अमावस्याकी रात थी) के नीचे सारी पृथ्वीपर आसन जमाये, गम्भीर रात्रि आँखें मूँदे ध्यान लगाये बैठी है और सम्पूर्ण चराचर विश्व मुख बन्द किये, साँस रोके, अत्यन्त सावधानीसे स्तब्ध होकर उस अटल शान्तिकी रक्षा कर रहा है। एकाएक आँखोंके ऊपरसे मानो सौन्दर्यकी एक लहर दौड़ गई। मनमें आया कि किस मिथ्यावादीने यह बात फैलाई है कि केवल प्रकाशका ही रूप होता है, अन्धकारका नहीं? भला इतनी बड़ी झूठ बात मनुष्यने किस प्रकार मान ली होगी? इस ब्रह्माण्डमें जो जितना गम्भीर, जितना अचिन्त्य, जितना सीमाहीन है, वह उतना ही अन्धकारमय है। अगाध समुद्र स्याही-जैसा काला है, अगम्य गहन अरण्यानी भीषण अन्धकारमय है। सर्व लोकोंका आश्रय, प्रकाशका भी प्रकाश, गतिकी भी गति, जीवनका भी जीवन, सम्पूर्ण सौन्दर्यका प्राणपुरुष भी, मनुष्यकी दृष्टिमें निविड़ अन्धकारमय है। मृत्यु इसीलिए मनुष्यकी दृष्टिमें काली है, और इसीलिए उसका परलोक-पन्थ इतने दुस्तर अँधेरेमें मग्न है। इसीलिए राधाके दोनों नेत्रोंमें समाकर जिस रूपने प्रेमके पूरमें जगत्‌को बहा दिया, वह भी घनश्याम है।

—श्रीकान्त, पर्व १

गम्भीर स्वप्न तो सहा जा सकता है—क्योंकि असह्य होते ही नींद टूट जाती है, परन्तु जागते हुए स्वप्न देखनेमें तो दम अटकने लगता है, किसी तरह वह खतम नहीं होता; और नींद भी नहीं टूटती। कभी मालूम होता है यह स्वप्न है, कभी मालूम होता है यह सत्य है।

—प्रकाश और छाया

यह हिन्दुस्तानियोंका देश (बिहार) था। मैं भले-बुरेकी बात नहीं कहता—मैं सिर्फ यही कहता हूँ कि बंगाल देशकी नाईं वहाँकी औरतें (भिखारीके आनेपर) 'बाबा हाथ जोड़ती हूँ और एक घर आगे जाकर देखो' कहकर उपदेश नहीं देतीं और पुरुष भी 'नौकरी न करके तुम भिक्षा क्यों माँगते हो?' यह कैफ़ियत तलब नहीं करते। धनी-निर्धन, बिना किसी भेद-भावके सब ही, प्रत्येक घरसे भिक्षा देते हैं—कोई विमुख नहीं जाता।

—श्रीकान्त, पर्व १

यह मैंने स्वदेश-विदेश सभी जगह देखा है कि जो काम लज्जित होने-जैसा है, उसमें बंगाली लोग अवश्य लज्जित होते हैं। वे भारत की अन्यान्य जातियोंके समान बिना संकोचके धक्का-मुक्की मारा-मारी नहीं कर सकते।

—श्रीकान्त, पर्व २

अँग्रेज़ी राजमें डाक्टरोंका प्रबल प्रताप है। सुना है कसाईख़ानेके यात्रियोंको भी अन्दर जाकर ज़िबह होनेका अधिकार प्राप्त करनेके लिए इन लोगोंका मुँह ताकना पड़ता है।

—अधिकार

सुना है अँग्रेजोंके महाकवि शेक्सपियरने कहा है कि संगीतके द्वारा जो मनुष्य मुग्ध नहीं होता वह ख़ून तक कर सकता है। किन्तु केवल एक मिनट भर सुन लेनेसे ही जो मनुष्यके ख़ूनको जमा दे ऐसे संगीत की ख़बर शायद उन्हें भी नहीं थी। जहाज़का गर्भ-गृह (जलयानमें) वीणापाणिका पीठ-स्थान है या नहीं, सो तो नहीं जानता; परन्तु यदि न होता तो यह कौन सोच सकता कि काबुली लोग भी गाना गाते हैं।

—श्रीकान्त, पर्व २

अधिकांश स्थानोंमें देखा जाता है कि सचमुचकी विपत्ति काल्पनिक विपत्तिकी अपेक्षा बहुत अधिक सहज और सह्य होती है। पहले से ही इस बातका ख्याल रखनेसे अनेक दुश्चिन्ताओंसे छुटकारा मिल सकता है।

—श्रीकान्त, पर्व २

वास्तवमें कलंक चीज़ ही ऐसी है कि लोग झूठे कलंकका भी भय किये बग़ैर नहीं रह सकते।

—श्रीकान्त, पर्व २

किसी आदमीके व्यथा सहनेके लिए तैयार हो जानेसे ही कुछ व्यथा देनेका कार्य सहज नहीं हो जाता।

—श्रीकान्त, पर्व २

अजीब देश है यह बंगाल! इसमें राह चलते माँ-बहनें मिल जाती हैं, किसमें सामर्थ्य है कि इनसे बचकर निकल जाय।

—श्रीकान्त, पर्व ३

ऐश्वर्यकी क्षमता इतनी भद्दी चीज़ है कि दूसरेसे उधार ली हुई होनेपर भी उसके अपव्यवहारके प्रलोभनको आदमी आसानीसे नहीं टाल सकता।

—श्रीकान्त पर्व ३

कर्महीन, उद्देश्यहीन जीवनका द्विवारम्भ होता है श्रान्तिमें, और अवसान होता है अवसन्न ग्लानिमें।

—श्रीकान्त, पर्व ३

हृदयकी बर्बरताके साथ सिर्फ़ अश्रद्धा और उपहास करनेसे ही संसारमें सब प्रश्नोंका जवाब नहीं हो जाता।

—श्रीकान्त पर्व ३

एकका मर्मान्तक दुःख दूसरेके लिए जब उपहासकी वस्तु हो जाता है तो इससे बढ़कर ट्रैजेडी संसारमें और क्या हो सकती है ?

—श्रीकान्त, पर्व ३

लड़केको अगर दस-बीसमें एक—बड़ा बनाना हो, तो माँको दुनियाँ मे न्यारी होनेकी ज़रूरत है ।

—बिन्दोका लल्ला

"मगर बहू; इतना भी अगर माफ़ नहीं कर सकतीं, तो बड़ी हुई थीं क्यों ?"

—बिन्दोका लल्ला

मनुष्यको जो चीज़ मिलती नहीं, वही उसके लिए अत्यंत प्रिय सामग्री हो जाया करती है । तुम अशान्तिमें हो शान्ति ढूँढ़ते फिरते हो—मैं शान्तिसे दिन बिता रहा हूँ, तो भी न जाने कहाँसे अशान्ति खींच ले आता हूँ ।

—बोझ

छलको पकड़ना मानो मनुष्यका स्वभावसिद्ध भाव है । जो मछली भाग जाती है वही क्या खाक बड़ी होती है ?

—बोझ

पापी अगर मर जाय तो प्रायश्चित्त कौन भोगेगा ?

—बोझ

कुछ लोग कमज़ोरोंके विरुद्ध अत्यंत असभ्य बात कर्कश और कठोर स्वरमें कहनेको ही स्पष्टवादिता समझते हैं ।

—हरिलक्ष्मी

"अच्छी हूँगी तो ऐसे ही हो जाऊँगी,—बाग्दी दूलों (अस्पृश्य छोटी जातियाँ) के घर दवा खाकर कभी कोई नहीं जीता ।"

—अभागिनी का स्वर्ग

ख़ातिरदारी-जैसी चीज़में मिठास ज़रूर है, पर उसका ढकोसला करनेमें न तो मिठास है और न स्वाद ही।

—षोड़शी

"जिन्हें माँ कहकर पुकारा है, सन्तान होकर हम उनका न्याय करने नहीं बैठेंगे।"

—षोड़शी

लोभ भी एक छूतकी बीमारी है।

—निष्कृति

एक बार सन्देहका बीज मनमें पड़ जानेपर व्यक्ति जैसे अपने शत्रु-पक्षपर सन्देह करना सीख जाता है, वैसे ही मित्र-पक्षसे भी उसका विश्वास उठ जाता।

—निष्कृति

जंगलमें रहनेवाले पक्षीकी अपेक्षा पिंजड़ेका पक्षी ही अधिक फड़-फड़ाता है।

—बड़ी बहन

अपना कर्त्तव्य करनेके पहले दूसरेके कर्त्तव्यकी आलोचना करनेमें पाप होता है।

—पण्डितजी

रुपया पैसा कमाना और उन्नति दोनों एक ही नहीं हैं।

—पण्डितजी

आघात चाहे जितना ही बड़ा क्यों न हो, परन्तु यदि वह प्रतिहत न हो, तो लगता नहीं है। पर्वतके शिखरसे गिरते ही मनुष्यके हाथ-पैर नहीं टूट जाते। टूटते वे तभी हैं जब पैरोंके नीचेकी कठिन भूमि उस वेगका प्रतिरोध करती है।

—पण्डितजी

मनुष्यकी परख तभी होती है जब रुपयोंका मामला आकर पड़ता है। इसी जगह धोखा-धन्धा नहीं चलता। यहीं मनुष्यका सच्चा स्वरूप दिखाई दे जाता है।

—रमा

संसारमें जितने पाप हैं उन सबसे बढ़कर पाप है मनुष्यकी दयाके ऊपर अत्याचार करना।

—रमा

धोनेसे कोयलेकी कालिख नहीं छूटती, उसे तो आगमें जलाना पड़ता है।

—रमा

जब आग सुलग जाती है तो यों ही नहीं बुझ जाती। ज़बर्दस्ती बुझा न दी जाय तो आस-पासकी चीज़ोंको भी तपा जाती है।

—रमा

एक ओर तो प्रबलकी अत्याचार करनेकी अखंड लालसा और दूसरी ओर निरुपाय लोगोंकी सहन करनेकी वैसी ही अविच्छिन्न कायरता। इन दोनोंको ही खर्व कर देना अच्छा है।

—रमा

कोई काम कभी यों ही निष्फल होकर यों ही शून्यमें नहीं मिल जाता। उसकी शक्ति कहीं न कहीं आकर अपना काम करती ही है। लेकिन किस तरह करती है, उसका पता हर समय सबको नहीं लगता। और इसीलिए आजतक इस समस्याकी मीमांसा नहीं हो सकी है कि क्यों एकके पापके लिए दूसरोंको प्रायश्चित्त करना पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि करना अवश्य पड़ता है।

—रमा

केवल सहते जाना ही संसारमें परम धर्म नहीं है।

—रमा

सिर्फ किसीकी भलाई करनेकी नीयतसे ही इस संसारमें भलाई नहीं की जा सकती। शुरूकी छोटी-बड़ी बहुत-सी सीढ़ियाँ पार करनेका धैर्य होना चाहिए।

—रमा

उपकारके बदलेमें यदि कोई प्रत्युपकार न करे, बल्कि उलटे उसके साथ अपकार करने लगे, तो भी उससे क्या बनता-बिगड़ता है, अगर मनुष्यकी कृतघ्नता दाताको नीचे न उतार लाये।

—रमा

एक आदमीपर आजन्म नज़दीक रहकर भी तिलभर विश्वास नहीं होता, और एक आदमीके सिर्फ़ दो ही चार घंटेके परिचयसे ही जी चाहता है कि उसके हाथ अपनी जान तक सौंप दी जाय तो कोई हर्ज नहीं।

—गृहदाह

किसी भी असत्यसे दीर्घकाल तक कोई फाँक या खाली जगह भरके नहीं रखी जा सकती।

—गृहदाह

चाहे कोई जात हो, या कोई आदमी, धीरे-धीरे जब वह हीन हो जाता है, तब उससे ज्यादा तुच्छ चीज़पर ही सारा दोष मढ़कर वह तसल्ली कर लेता है। समझता है, इस आसान चीज़को सम्हाल लेनेसे ही वह रातों-रात बड़ा हो उठेगा।

—गृहदाह

प्राप्तिकी अदम्य धरतीसे विच्युत करके पाना कितना बड़ा बोझ है!

—गृहदाह

मृत्युका शोक जैसा बड़ा है उसकी शान्ति और माधुर्य भी वैसा ही बड़ा है।

—गृहदाह

अपनी भलाई और बुराई देखना कोई कठिन काम नहीं है; कठिन काम तो केवल उसे स्वीकार कर सकना ही है।

—नारीका मूल्य

यह चालबाज़ी चल सकती है कि हम मधुर रसका सारा रस नारियोंमेंसे ही निचोड़ कर निकाल लें और स्वयं कुछ भी रस न दें, लेकिन यह चालबाज़ी सदा नहीं चल सकती। विश्वेश्वरके अलंघ्य न्यायालयमें एक न एक दिन पुरुष पकड़े ही जायँगे। हो सकता है कि रस तो उस समय भी मधुर रहे परन्तु शायद उसका मधुर फल न रह जायगा।

—नारीका मूल्य

संसारमें जो अनेक बड़े-बड़े कृती पुरुष हो गये हैं, उनके जीवनकी आलोचना करनेसे पता चलता है कि उन सभी लोगोंने ऐसी माताएँ पाईं थीं, जिनके कारण संसारमें उन्नति कर सकना असम्भव नहीं हो सका था।

—नारीका मूल्य

अपनी लापरवाहीसे अच्छे आदमीका भी बुरा हो जाना कोई असंभव बात नहीं है।

—अनुराधा

चुपचाप और बिना विचारे ही सह लेनेको हम कर्तव्य समझ बैठे हैं। इसीसे तो उनका (अँग्रेज़) चोट पहुँचानेका अधिकार इतना दृढ़ और उग्र हो उठा है।

—अधिकार

अपने विरुद्ध अपनी बुराई घोषित करनेमें एक तरहकी निरपेक्ष स्पष्टवादिताका दम्भ है—एक तरहकी सस्ती ख्याति भी उससे फैल जाती है; परन्तु यह सिर्फ़ ग़लती ही नहीं झूठ भी है।

—अभिकार

"पराधीन देशका सबसे बड़ा अभिशाप यह कृतघ्नता ही तो है! जिनकी सेवा करने जाओगी, वे ही तुम्हें बेच देना चाहेंगे! मूढ़ता और कृतघ्नता तुम्हें हर क़दम पर सुई-सी चुभती रहेगी। यहाँ न श्रद्धा है और न सहानुभूति; कोई पास तक नहीं बुलायेगा, कोई सहायता देने नहीं आयेगा। ज़हरीला साँप समझकर सब दूर हट जायेंगे। देशसे प्रेम करनेका यही तो हम लोगोंके लिए पुरस्कार है।"

—अभिकार

कड़ुआहटके कारण संसार छोड़कर सिर्फ़ भाग्यहीन जीवन ही बिताया जा सकता है, वैराग्य-साधन नहीं किया जा सकता।

—अभिकार

दुष्ट घावके समान ऐसे मनुष्य भी होते हैं जिनकी विषैली भूख एक बार किसीकी भी त्रुटिका आसरा पा जाने पर फिर किसी प्रकार मिटना ही नहीं चाहती।

—दत्ता

जो मालिक है, उसे तर्कके समय सोलह आने हराकर भी अदायगी के समय उससे आठ आनेसे अधिक वसूल नहीं करना चाहिए; क्योंकि यह पावना अन्त तक पक्का नहीं होता।

—दत्ता

जो काम अच्छा है, उसका अधिकार मनुष्य भगवान्‌से ही पाता है, उसे किसीके सामने हाथ पसार कर नहीं लेना होता।

—दत्ता

जिसका जहाँ स्थान नहीं है, जिसका जहाँ प्रयोजन नहीं है, वहाँ वह बचता नहीं।

—दत्ता

संसारमें बड़े कार्य भी किसी न किसीके लिए हानिकारक होते हैं।

—दत्ता

संसारमें जो लोग बड़े काम करने आते हैं, उनका व्यवहार हमारे समान साधारण लोगोंके साथ यदि अक्षर-अक्षर न मिले, तो उन्हें दोष देना असङ्गत है, यहाँ तक कि अन्याय है।

—दत्ता

सच्चे आनन्दका सुधा-पात्र तो अपव्ययके अविचारसे ही ऊपर तक भर उठता है।

—शेष प्रश्न

कर्तव्यके अन्दर जो आनन्द मालूम होता है वह आनन्द नहीं, आनन्दका भ्रम है, वास्तवमें दुःखका ही नामान्तर है। उसे बुद्धिके शासनसे ज़बर्दस्ती आनन्द मानना पड़ता है। पर वह तो बन्धन है।

—शेष प्रश्न

जिसे पहचानते नहीं, उस पर अश्रद्धा करके अपनेको छोटा मत बनाओ।

—शेष प्रश्न

अविवाहिता प्रौढ़ाः—वास्तवमें स्त्रियोंके लिए यही समय निःसंग जीवन होनेके कारण सबसे बुरा होता है। इसीसे शायद असहिष्णु, कपटी, पर-छिद्रान्वेषी,—यहाँ तक कि निष्ठुर होकर सब देशके पुरुष इन अविवाहिता प्रौढ़ा स्त्रियोंसे बचकर चलना चाहते हैं।

—शेष प्रश्न

तेज़ीका भी एक भारी आनन्द है,—क्या गाड़ीकी और क्या इस जीवनकी। मगर जो डरपोक हैं वे चल नहीं सकते। वे सावधानीसे धीरे-धीरे चलते हैं, सोचते हैं, पैदलका कष्ट जो बच गया वही उनके लिए काफ़ी है, मार्गको धोखा देकर वे ख़ुश हैं, अपनेको धोखा देनेका उन्हें भान ही नहीं होता।

—शेष प्रश्न

सब तरहके मतों पर वही श्रद्धा रख सकता है, जिसके अपने मतकी कोई बला नहीं। शिक्षाके द्वारा विरुद्ध मतकी चुपचाप उपेक्षा की जा सकती है, पर उसपर श्रद्धा नहीं की जा सकती।

—शेष प्रश्न

समाज सुधारकः—कर्मके जगत्‌में आदर्माके व्यवहारका मेल ही बड़ा मेल है, मनका नहीं। मन हो तो बना रहे; अन्तःकरणका विचार अन्तर्यामी करेंगे, हमारा काम व्यावहारिक एकताके बिना नहीं चल सकता। यही हमारी कसौटी है,—इसीसे हम जाँच करते हैं। बाहरसे अगर स्वरमें मेल न हो तो केवल दो जनोंके मनके मेलसे संगीतकी सृष्टि नहीं होती, वह तो सिर्फ़ कोलाहल ही कहलायेगा। राजाकी जो सेनाएँ युद्ध करती हैं, उनकी बाहरकी एकता ही राजाकी शक्ति है। मनसे उसे कोई मतलब नहीं। नियमका शासन संयम है—और यही हम लोगोंकी नीति है। इसे छोटा बनानेसे मनके नशेके लिए खुराक जुटाई जा सकती है, और कुछ नहीं। यह उच्छृङ्खलताका ही नामान्तर है।

—शेष प्रश्न

विवेक-बुद्धि ही संसारमें सबसे बड़ी चीज़ नहीं है। विवेककी दुहाई देनेसे ही समस्त उचित-अनुचितकी मीमांसा नहीं हो जाती।

—शेष प्रश्न

जीवनकी बहुत-सी बड़ी चीज़ोंको हम तब पहचान पाते हैं, जब उन्हें खो देते हैं।

—शेष प्रश्न

संसारमें यह व्यवस्था तो प्राचीन कालसे चली आ रही है कि एक के साथ दूसरेका मेल नहीं खाता, तो जो शक्तिशाली होता है वह कमज़ोरको दण्ड देता है।

—शेष प्रश्न

इसी तरह मनुष्य अपनेको सुधारते हुए आज मनुष्य हो सका है। भूलसे तो कोई डर नहीं, जब तक कि दूसरी तरफ़का मार्ग खुला है। वह मार्ग आँखोंके सामने बन्द दिखाई देता है तभी तो समस्या कठिन होती है।

—शेष प्रश्न

गाली देकर सिर्फ़ अपमान ही किया जा सकता है, मतकी प्रतिष्ठा नहीं की जा सकती। कठोर बात ही दुनियामें सबसे ज्यादा कमज़ोर होती है।

—शेष प्रश्न

आदर्श या आइडिया सिर्फ़ दो चार आदमियोंके लिए ही है,—इसीसे उसकी क़ीमत है। उसे साधारणके बीच खींच लानेसे फिर वह पागलपन हो जाता है, उसका शुभ मिट जाता है, और बोझ असह्य हो जाता है।

—शेष प्रश्न

पोथीकी विद्या जब तक मनुष्योंके सुख-दुःख, भलाई-बुराई, पाप-पुण्य, लोभ-मोहके साथ सामंजस्य नहीं कर पाती तब तक पुस्तकोंके पढ़े हुए कर्तव्य-ज्ञानका फल मनुष्योंको बिना कारण छेदेगा, अत्याचार करेगा और संसारमें किसीका भी कल्याण नहीं करेगा।

—श्रीकान्त, पर्व ४

अनुकरणसे मुक्ति नहीं मिलती, मुक्ति मिलती है ज्ञानसे।

—शेष प्रश्न

अभिवादनके उत्तरमें किसने कितना हाथ उठाया, कौन कितना पीछे हट गया, नमस्कारके प्रति-नमस्कारमें किसने कितना सिर नवाया—इस बातको लेकर मर्यादाकी लड़ाई सभी देशोंमें है। अहंकारके नशेकी खुराक तुम्हें अपनी पाठ्य-पुस्तकोंके पन्ने-पन्नेमें मिलेगी।

—विप्रदास

कठोर बातका यह स्वभाव ही है कि वह अपने ही भारसे आप कठोरतर होती जाती है।

—विप्रदास

अनिश्चित पथसे एक सुनिश्चितकी आशा ही मनुष्यको पागल बनाकर निरंतर धक्का देकर चलाया करती है।

—नया विधान

चरित्रहीन (शरत्‌का अपना उपन्यास) परः—सुन रहा हूँ कि उसमें मेसकी नौकरानीके रहनेके कारण रुचिको लेकर ज़रा चख-चख मचेगी। मचने दीजिये। लोग कितनी ही निन्दा क्यों न करें। जो लोग जितनी निन्दा करेंगे, वे उतना ही अधिक पढ़ेंगे। वह भला हो या बुरा, एक बार पढ़ना शुरू करने पर पढ़ना ही होगा। जो समझते नहीं हैं, जो कल्याणका मर्म नहीं जानते, वे शायद निन्दा करेंगे। पर निन्दा करने पर भी काम बनेगा। किन्तु यह साइकोलोजी (मनोविज्ञान) और एनलिसिस (विश्लेषण) के सम्बन्धमें बहुत अच्छा है; इसमें संदेह नहीं। और यह एक सम्पूर्ण वैज्ञानिक नैतिक उपन्यास (Scienirfic Ethical Novel) है!

—पत्रावली—उपेन्द्रनाथ गंगो० को

पाप छिपानेसे और बढ़ता है।

—विराज बहू

चरण स्पर्शः—वह कुसंस्कार है। भद्र समाजमें न चलने वाला खोटा सिक्का है।

—विप्रदास

विभिन्न कर्म-पद्धतियोंके बीच भी सच्ची एकता निहित रह सकती है, यह सत्य स्वीकृत न होनेसे ही गड़बड़ होती है।

—तरुणोंका विद्रोह

पढ़कर आनन्दातिरेकसे आँखें गीली न हो जायँ, तो वह कहानी कैसी ?

—पत्रावली–उपेन्द्रनाथ गंगो० को

चरित्रहीन परः—कौन कहता है कि मैं गीताकी टीका लिख रहा हूँ ? चरित्रहीन इसका नाम है ! पाठकको पहलेसे ही इसका आभास दे दिया गया है। यह सुनीतिसंचारिणी सभाके लिए भी नहीं है और स्कूल-पाठ्य पुस्तक भी नहीं है। अगर लोग टालस्टायके रिजरेक्शन (Resurrection) को एक बार भी पढ़ते हैं, तो चरित्रहीनके विषयमें कहनेको कुछ भी नहीं रहेगा। इसके अलावा जो कलाके तौर पर, मनोविज्ञानके तौर पर महान् पुस्तक है, उसमें दुश्चरित्रकी अवतारणा रहेगी ही।

—पत्रावली–फणीन्द्रनाथ पाल को

अनुभव दूरदर्शिता आदि केवल शक्ति प्रदान ही नहीं करते, शक्तिका हरण भी करते हैं।

—पत्रावली–दिलीपकुमार राय को

लिखनेमें शीघ्रता मुंशीकी योग्यता है, लेखककी नहीं।

—पत्रावली–दिलीपकुमार राय को

मनुष्यकी एक उम्र है जिसके बाद काव्य कहो या उपन्यास कहो लिखना उचित नहीं। अवसर ग्रहण करना ही कर्तव्य है।

—पत्रावली–दिलीपकुमार राय को

बुढ़ापा है, मनुष्यको दुःख देनेका समय, तब मनुष्यको आनन्द देनेका अभिनय करना वृथा है।

—पत्रावली–दिलीपकुमार राय को

जिस आदमीने अपना सब कुछ दे दिया है, उसे देना देना नहीं है, पाना है।

—पत्रावली–दिलीपकुमार राय को

चिरन्तनकी दुहाई शरीरके ज़ोरसे दी जा सकती है और किसी तरह नहीं। वह मृगतृष्णा है।

—पत्रावली–अनुरूपानंद राय को

हृदयकी कोमलता और दुर्बलता एक चीज़ नहीं है।

—जागरण

दुनिया सिर्फ़ दुकान ही नहीं है। बटखरेसे तौलकर दर बाँध देनेसे ही मनुष्यका मनुष्यके प्रति कर्तव्य समाप्त नहीं हो जाता। क्षमताहीन मनुष्यको भी जीनेका अधिकार है—काम करनेकी उसकी सामर्थ्य लुप्त हो गई है, ज़िन्दा रहनेका उसका अधिकार एक मात्र इसी हेतुसे छीना नहीं जा सकता।

—जागरण

कर्तव्य कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसको नाप-जोखकर देखा जाय।

—जागरण

लगान तुम्हारा (जमींदार) प्राप्य हो सकता है, इसीसे उसका औचित्य प्रमाणित नहीं हो जाता।

—जागरण

संसारकी सभी चीजें सफ़ाई और सचाईका सहारा लेकर हमारे सामने हाज़िर नहीं हो सकतीं, इसीलिए उन सबको मिथ्या मानकर अगर हम अस्वीकार करेंगे तो हमें अनेक अच्छी चीज़ोंसे वंचित रहना होगा।

—चरित्रहीन

गुंडोंमें क्या भले आदमियोंसे अधिक हिम्मत होती है? बुरे काम कर सकनेको ही हिम्मत नहीं कहते।

—चरित्रहीन

वृद्ध आदमियोंके आगे कोई युक्ति युक्ति ही नहीं है। वे अपने प्रयोजनसे बढ़कर संसारमें और कुछ देख ही नहीं पाते।

—चरित्रहीन

लेकिन दूसरेके वक्त (न्याय विचार करनेमें) मनुष्य अनेक बातोंको जानबूझकर भी ज़ोर करके ज़बर्दस्ती भूल जाना चाहता है। वह अंधेको सूझतेकी सज़ा देकर अपनेको बहादुर समझता है। दूसरेका विचार करते समय उसे यह बात याद नहीं आती कि आँखें न रहने पर उसके स्वयं गढ़ेमें गिरनेकी सम्भावना उस आदमीकी अपेक्षा तनिक भी कम नहीं है।

—चरित्रहीन

दो तरहके अंधे होते हैं। जो लोग आँखें मूँदकर चलते हैं, उनके बारेमें तो चिन्ता नहीं करनी पड़ती—उनको पहचान लिया जाता है। किन्तु जो लोग दोनों आँखें खोले देखते हुए चलते हैं, लेकिन असलमें देख नहीं पाते, उन्हींके कारण सारी गड़बड़ी है। वे आप भी ठगे जाते हैं और दूसरोंको भी ठगनेसे बाज़ नहीं आते।

—चरित्रहीन

मौजूदा समाजके हम मानव-प्राणी जिन वस्तुओंको या जीवनके जिन कर्मोंको अत्यंत आवश्यक समझते हैं और जिनके सहारे हम अपना संसार चलाते हैं, उनमेंसे अधिकांश निरर्थक एवं सारशून्य हैं।

—जागरण

मुलम्मेसे तुम अनाड़ीको बहका सकते हो, किन्तु जिस आदमीने जल-जलकर सोनेके रंगको पहचान लिया है, और इस दुःखके कारोबारमें जिसकी भरी हुई नाव डूब गई है, उसको तुम किस तरह धोखा दोगे?

—चरित्रहीन

"मनुष्यके रक्तके साथ अगर पाप घुला-मिला न होता, तो तुम्हारी ही बात सत्य होती (जो निर्मल है, जो शुभ है, उसीको सर्वोपरि स्थान देना चाहिए)। एक न्यायके सिवा संसारमें और कुछ भी न रहने पाता। दया, माया, ममता, क्षमा आदि हृदयकी कोमल वृत्तियों का तब कोई नाम भी नहीं जानता। तुमने अभी सूर्यके प्रकाशके सादे रंगके साथ न्यायकी तुलना की। किन्तु सादा या श्वेत रंग क्या सभी रंगोंके सम्मिश्रणसे नहीं उत्पन्न होता? यही सादा प्रकाश जैसे त्रिकोण काँचमें पड़कर रंगीन हो जाता है, वैसे ही न्याय भी अन्याय-अधर्म, और पाप-तापके टेढ़े मार्गसे होकर दया, माया, ममता और क्षमाके रूपमें विच्छिन्न होकर दिखाई देता है। मैं मानती हूँ कि अन्यायको क्षमा करना अधर्मको आश्रय देना है, किन्तु यह बात भी तो स्वीकार किये बिना मैं नहीं रह सकती कि अधर्म धर्मका ही एक रूप है—एक पहलू है।

—चरित्रहीन

विद्याके न होने पर अविद्या घेर ही लेती है। इसीसे मनुष्य जो नहीं जानता वही दूसरेको जताना चाहता है, जो स्वयं नहीं समझता उसे दूसरेको समझाना चाहता है।

—चरित्रहीन

मनुष्यका ऐसा बुरा स्वभाव है कि जो उसके बूतेके बाहर होता है, उसीके प्रति उसे सबसे बढ़कर लोभ रहता है। भगवान्‌को पाया नहीं जा सकता, इसीलिए तो मनुष्य इस तरह अपना सर्वस्व देकर उनको चाहता है।

—चरित्रहीन

आज्ञा जब सचमुच आज्ञाके रूपमें अकुण्ठित भावसे निकल आती है, तब वह चाहे जिसके मुँहसे निकले, आदमी न जाने किस तरह यह निश्चित अनुभव कर लेता है कि इसे अग्राह्य नहीं किया जा सकता।

—चरित्रहीन

साहसका बढ़ना और निर्भीकताका उपार्जन करना एक चीज़ नहीं है। एक देहकी है, दूसरी मनकी। देहकी शक्ति और कौशल बढ़नेसे अपेक्षाकृत दुर्बल और कौशल न जाननेवालेको हराया जाता है, लेकिन निर्भयताकी साधनासे शक्तिमानको परास्त किया जाता है, संसारमें उसे कोई बाधा नहीं दे सकता; वह अजेय होता है।

—निबन्धावली-सत्याश्रयी

दुर्बलके प्रति अत्याचार करनेमें जिन्हें संकोच नहीं होता, सबलके तलवे चाटनेमें भी उन्हें ठीक उतना ही संकोच नहीं होता।

—निबन्धावली-सत्याश्रयी

अत्याचार निवारण करनेका भार हमें खुद लेना चाहिए, और हिन्दू-मुसलिम एकता नामकी अगर कोई चीज़ हो तो उसे पूरा करनेका भार मुसलमानोंके ऊपर छोड़ देना चाहिए।

—निबन्धावली—वर्त्तमान हिन्दू-मुसलिम समस्या

कड़ी बात कह सकना ही संसारमें कठिन काम नहीं है। मनुष्यका अपमान करनेसे अपनी मर्य्यादाको ही सबसे ज्यादा चोट पहुँचती है।

—निबन्धावली—शेष प्रश्न

ऐश्वर्यको अकेले भोगनेकी चेष्टा करते ही वह अपने आपको आप ही व्यर्थ कर देता है। जो सभीका है वहाँ एक आदमीका लोभ परास्त होगा ही।

—निबन्धावली—साहित्य और नीति

संसारमें बहुत-सी ऐसी चीज़ें हैं, जिन्हें छोड़ने पर ही पाया जाता है, हिन्दू-मुसलिम एकता भी उसी तरहकी चीज़ है। जान पड़ता है, इसकी आशा बिलकुल छोड़कर काममें लग जा सकने पर ही शायद एक दिन इस अत्यंत दुष्प्राप्य निधिके दर्शन मिलेंगे। कारण, तब मिलन केवल एककी चेष्टासे नहीं होगा, वह होगा दोनोंकी हार्दिक और सम्पूर्ण इच्छाका फल।

—निबन्धावली—वर्त्तमान हिन्दू मुसलिम समस्या

सभी जहाँ पर बाज़ारका-सा शोरगुल करें वहाँ विचारके बदले अविचार ही अधिक होता है।

—देना पावना

दुनियाके अव्वल नम्बरके चालाक लोग भी कभी-कभी बेढब ग़लती कर बैठते हैं; नहीं तो यह संसार एकदम मरुभूमि बन जाता, कहीं रसकी भाप भी जमनेको जगह न पाती।

—देना पावना

जिसकी जितनी शक्ति है, वह उतना ही बड़ा दस्यु है। सुविधा और सामर्थ्यके माफ़िक दूसरेका गला दबाकर छीन लेना ही इन लोगोंका काम है। यही तो दुनिया है, यही तो समाज है, यही तो मनुष्यका धंधा है।

—देना पावना

कोई अध्यापक है, सिर्फ इसीलिये दुनिया के छल प्रपंचके कामोंसे अलग मान लेना दुराशा मात्र है।

—नया विधान

दुर्बल प्रकृतिके आदमियोंका स्वभाव ही यह होता है कि वे काल्पनिक मानसिक पीड़ा और असंगत मान गुमानके द्वारसे क़दम-ब-क़दम तेज़ीसे नीचे उतरते चले जाते हैं।

—नया विधान

"एक आदमीके अपराधका दण्ड दूसरे आदमीको क्यों भोगना पड़ता है? भोगना पड़ता है इतना ही जानती हूँ, किन्तु क्यों सो नहीं जानती।"

—देना पावना